✣ प्रस्तावना। ✣

आगरा निवासी श्रीमान् परिमलजी नामक विद्वान कविने श्री 'श्रीपालचरित्र' ग्रन्थ विक्रम सं० १६५१ में हिन्दी पद्योंमें रचा था, उसकी हस्तलिखित प्रति लाहौरमें थी, उसे शुद्ध करके बा० ज्ञानचंदजी जैनी लाहौरने सन् १९०४ में छपाकर प्रगट किया था किन्तु वह समाप्त होगया और पद्यमें होनेसे सर्वोपयोगी भी नहीं था। इसलिये हमने सभी प्रान्तवासी जैनोंके हितार्थ इसे राष्ट्र भाषा हिन्दीमें सं० १९७० में श्री० धर्मरत्न पं० दीपचन्दजी वर्णी अधिष्ठाता, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम-मथुरासे अनुवाद कराकर प्रकट किया था।

पूज्य वर्णीजी जैन समाजके आदर्श त्यागी एवं विद्वान हैं। आपने अनेक ग्रन्थोंका संपादन व अनुवाद किया है। और इस श्रीपालचरित्रका अनुवाद एवं संशोधन परिवर्द्धन आदि भी सर्वसाधारणके हितार्थ आपने अमूल्य ही कर दिया है।

श्रीपालचरित्र अर्थात् अष्टाह्निका व्रतमाहात्म्य जैन समाजमें कितना प्रिय है, यह इसीसे प्रगट है कि इसकी यह चौथी आवृत्ति प्रगट हो रही है, अभीतक इसकी २७०० प्रतियां खतम होचुकी हैं और यह चौथीवार १००० प्रतियां प्रकट की जाती हैं।

इस आवृत्तिमें यथोचित संशोधन व परिवर्धन हुआ है और प्रासंगिक ८ चित्र भी दिये गये हैं। इन चित्रोंसे इस ग्रंथकी शोभा अधिक बढ़ गई है। आशा है कि इस चरित्रग्रन्थसे समाज नंदीश्वर-व्रत माहात्म्यको समझेगी और पालन करके पुण्योपार्जन करेगी।

वीर सं० २४६२
चैत्र सुदी १-सूरत.

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

विषय-सूची ।

श्री वीतरागाय नमः ॥

श्रीपालचरित्र।

(श्रीनंदीश्वरव्रतमाहात्म्य)

मंगलाचरण।

वीतराग सर्वज्ञ जिन, हित उपदेशक देव।
शिवमग दर्शक आप्त नित, नमूं करूं पदसेव ॥ १ ॥
विषयारंभ परिग्रह बिन, गुरु नमों निर्ग्रन्थ।
कायर जनको जिन कियो, सरल मोक्षको पंथ ॥ २ ॥
ॐकार वाणी नमूं, द्वादशांग उर धार।
श्री श्रीपाल चरित्रकी, करूँ बचनिका सार ॥ ३ ॥

पंचपरमेष्ठि-स्तुति।

कर्म घातिया नाशकर, लहो चतुष्क अनन्त।
नमूँ सकल परमात्मा, वीतराग अर्हन्त ॥ ४ ॥
नित्य निरंजन सिद्ध शिव, मूर्तिरहित साकार।
अमल निकल परमात्मा, नमूं त्रियोग सम्हार ॥ ५ ॥
दिक्षा शिक्षा देत जो, सकल संघके ईश।
ऐसे सूर मुनीन्द्रको, वंदू कर धर शीश ॥ ६ ॥
द्वादशांग श्रुत निपुण जे, पढ़े पढ़ावें धीर।
ऐसे श्री उवझाय मुनि, वेग हरो भवपीर ॥ ७ ॥
विषयारंभ निवारके, मोह कषाय विडार।
तजे ग्रंथ चौवीस जिन, साधु नमूँ सुखकार ॥ ८ ॥
पंच परम पद मैं नमूं, आठों अंग नवाय।
जा प्रसाद मंगल लहूं, कोटि विघ्न क्षय जाय ॥ ९ ॥

वर्तमान चौवीसी जिनस्तुति ।

नमों मैं प्रथम ऋषभ चरणां, दूजे अजित अजित रिपु जीते ध्याऊं अघ हरना ॥ तीजे संभव भवनाशे, चौथे अभिनन्दन पद सेऊं कर्म नशैं जासे ॥ पंचम सुमति सुमति दाता, छट्ठे पद्मनाथ पद पंकज सेऊं लहुं साता ॥ सातवें श्री सुपार्श्वनाथा, आठें चन्द्रनाथ जिन चरणों नाऊं निज माथा ॥ नवमें पुष्पदंतसंता, दशवें शीतलनाथ जिनेश्वर देत शर्म ऽनन्ता ॥ ग्यारवें श्रेयांसस्वामी, वासुपूज्य बारहवें ध्याऊं तीनलोकनामी ॥ तेरवें विमल विमल जानो, अनन्त चतुष्टय युत चौदहवेंऽनन्तनाथ मानो ॥ पंद्रवें धर्म शर्म करता, सोलहवें श्रीशान्तनाथ प्रभु भवाताप हरता ॥ सत्रवें कुंथुनाथ-स्वामी, अरहनाथ अरिगण वसुनाशक अठारवें नामी ॥ उनीसवें मल्लि सल्ल चूरे, विंशतवें मुनिसुव्रतस्वामी व्रत अनंत पूरे ॥ इकीसवें नमिनाथ देवा, बाइसवें श्रीनेमीनाथ शत इन्द्र करें सेवा ॥ तेइसवें पार्श्वनाथ ध्याऊं, चौविसवें श्रीवर्धमानकी भक्ति हिये भाऊं ॥ तीर्थंकर चौवीसों नामी, पंचकल्याणक धारी सब ही शिवपुर विसरामी । विनय यह दीपचंद केरी जब लग मोक्ष मिले नहिं तब लग लहूं भक्ति तेरी ॥

यह विधि कर जिन स्तुति, भक्ति भाव उर भाय ।
करूँ वचनिका ग्रन्थकी, शारद करो सहाय ॥

ग्रंथ (चरित्र) रचनाका कारण।

अनंत अलोकाकाशके ठीक मध्यभागमें असंख्यात प्रदेशी ३४३ घन राजू प्रमाण, दोनों पग फैलाकर अपनी कमर पर हाथ रक्खे खड़े हुवे मनुष्यके आकारका, पूर्व पश्चिम नीचे सात राजू चौड़ा, फिर क्रमसे घटता हुवा सात राजू ऊंचाईपर केवल एक ही राजू और यहांसे साढ़े तीन राजू ऊंचाई तक क्रमसे बढ़ता हुवा ५ राजू होकर फिर क्रमसे घटते हुवे ऊपर साढ़े तीन राजू जाकर एक राजू मात्र चौड़ा और उत्तर दक्षिण सर्वत्र सात सात राजू ऊपरसे नीचे तक चौड़ा, अर्थात् नीचेसे ऊपर तक कुल १४ राजूकी ऊंचाईवाला ३४३ घनराजू प्रमाण असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश है।

इसमें इतने ही (जघन्य युक्तासंख्यात प्रदेश प्रमाण प्रदेशोंवाले) धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अखंड सर्वत्र व्याप्त हैं। इसके सिवाय लोकाकाश प्रमाण ही असंख्यात् प्रदेशोंवाले, अनन्तानन्त जीव द्रव्य संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेशों (परमाणुओं) के अनेकों स्कन्धों तथा परमाणु स्वरूप रूपी पुद्गल और लोकप्रमाण असंख्यात कालाणुओंसे यह लोकाकाश खूब ठसाठस भर रहा है। इस लोकाकाशके मध्य (उत्तर, दक्षिण दोनों ओर तीन तीन राजू छोड़कर ठीक मध्य भागमें) एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊंची त्रसनाड़ी है, अर्थात त्रस (दो, तीन, चार और पांच इन्द्रीवाले) जीव केवल इतने ही क्षेत्रमें रहते हैं। परन्तु स्थावर (एकेन्द्री) त्रस नाड़ीके अन्दर और बाहर सर्वत्र पाये जाते हैं।

लोकाकाशके उर्द्ध्व, मध्य और अधोलोक इस प्रकार तीन

खण्ड माने गये हैं। नीचेसे लेकर ऊपर सात राजू तक त्रसनाड़ी (अधोलोक) में क्रमसे सातवां, छठवां, पांचवां, चौथा, तीसरा, दूसरा और पहिला नर्क तथा भवनवासी और व्यंतर जातिके देवोंका निवास है। इसके ऊपर इसी पृथ्वीपर सुदर्शन मेरुकी मूल जमीन १००० महायोजनसे लेकर ऊपर ९९०४० महायोजन प्रमाण ऊंचाईवाला १ राजू लम्बा, चौड़ा तिर्यक् लोक (मध्य लोक) है। यहांपर मनुष्य और तिर्यंच तथा व्यंतर और ज्योतिषी देवोंका निवास है। इससे ऊपर कुछ कम सात राजू तक कल्प (स्वर्ग) वासी देव, इन्द्र तथा कल्पातीतों (अहमिन्द्रों) का निवास है। और अन्तमें सबसे ऊपर लोकशिखरपर तनवातवलयके अंतिम भागमें ४५ लाख महायोजनप्रमाण गोल मनुष्य क्षेत्रके बराबर क्षेत्रमें समस्त कर्म-मल-कलंकोंसे रहित तथा अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यादि अनन्त गुणोंसे सहित नित्य निरंजन अमूर्तीक अखण्ड त्रिलोक पूज्य अनन्ते सिद्ध परमात्मा अपनी २ सुखसत्ता अवगाहना युक्त, शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल शिलाके ऊपर स्वाधार तिष्ठे हैं। उन सिद्ध भगवानको मेरा सर्वदा मन, वचन, कायसे अष्टांग नमस्कार होवे।

ऊपर कहे अनुसार त्रसनाड़ीके बीचोंबीच (ऊपर नीचे सात२ राजू छोड़कर) जो एक राजू प्रमाण चौकोर मध्यलोक है, उसमें जघन्य युक्ता संख्यात (संख्या प्रमाण) द्वीप और समुद्र हैं, जो एक दूसरेको चूड़ीकी नाई घेरे हुए दूने दूने विस्तारवाले हैं। अर्थात् सबसे मध्यमें नाभिके समान १ लाख योजन × २००० कोसके व्यासवाला थालीके आकार गोल जंबूद्वीप है। इसके सब ओर गोल

ो दो लाख योजन व्यासवाला (चौड़ा) लवण-समुद्र, उसके सब ओर चार चार लाख योजन चौड़ा घातकीखण्ड द्वीप, इसके आस-पास ८ आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है। इसके आस-पास १६ सोलह योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। (इस द्वीपमें ठीक बीचमें कोटकी भींतके समान अत्यन्त ऊँचा (मनुष्योंसे अनुलंघ्य) मानषोत्तर पर्वत है। इससे यह आधा द्वीप और धातुकीखण्ड तथा जम्बूद्वीप मिलकर अढ़ाई द्वीप ४५ लाख महायोजनके व्यासवाले हैं।

इतना ही मनुष्य लोक है। यहींसे ये संसारी जीव कर्मको नाश करके मुक्त होसक्ते हैं। इनके सिवाय इसी प्रकार दूने दूने बिस्तारवाले समुद्र उसके आसपास द्वीप, उसके आसपास समुद्र, आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। जिनमें सबसे अंतका द्वीप तथा समुद्र स्वयंभूरमण है। इस अंतके आधे द्वीप और पूरे समुद्रमें क्रमशः पंचेंद्रिय थलचर जलचर पशु होते हैं। यह सब तिर्यक् लोक है। अढ़ाई द्वीपसे परे मनुष्योंका गमनागमन नहीं है।

ऐसे इस मध्यलोकके मध्यवर्ती नाभिके तुल्य इस जम्बूद्वीपमें बीचोंबीच सुदर्शन मेरु नामका १ लाख योजन ऊँचा पर्वत है, जिसके दक्षिण उत्तर छह कुलाचल पर्वत हैं। उनसे इसके सात क्षेत्र होगए हैं। उन क्षेत्रोंमेंसे दक्षिण दिशामें धनुषाकार यह भरतक्षेत्र है। जिसके बीचमें वैताढ्य पर्वत तथा महागंगा और सिंधु नदी वहनेसे प्राकृतिक छह भाग होगए हैं। सो आसपास तथा ऊपरके मिलकर ५ म्लेच्छ और दक्षिण भागमें १ आर्यखंड है। उसके मध्य भागमें मगध देश है जिसमें एक राजगृही नामकी नगरी है। यह

"फल पाया है, सो कृपाकर कहिये, जिसे सुनकर भव्यजीव धर्ममें प्रवर्ते, और दुखसे छूटकर स्वाधीन सुखका अनुभवन करें"। तब **गौतमस्वामी** (जो श्री वीर भगवानके उपदेशकी सभा (समवशरण) में प्रथम गणधर=गणेश थे) बोले-" हे राजा ! इसकी कथा इस प्रकार है, सो मन लगाकर सुनो ।"

अंगदेश चंपापुरका वर्णन।

इसी जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें जो यह आर्यखंड है, इसके मध्य एक अंगदेश नामका देश है और उसमें चंपापुर नामका एक नगर है। इसी नगरके समीपी उद्यानसे श्री **वासुपूज्यस्वामी** बारहवें तीर्थंकर निर्वाण पधारे हैं। यह नगरी अत्यन्त रमणीक है। चारों ओर वन उपवनोंसे सुशोभित है। उन वनोंमें अनेक प्रकारके वृक्ष अपनी स्वाभाविक हरियाली लिये पवनके झकोरोंसे हिल रहे हैं। मंदसुगंध वायु वहा करती है। कहींपर कल्लोलें करते हुवे नदी नाले वहते हैं। जिनमें अनेक जातिके जलचर जीव क्रीड़ा कर रहे हैं। कहीं वृक्षोंपर पक्षी अपने २ घोंसलोंमें बैठे नाना प्रकारकी किल्लोलें कर रहे हैं। वे कभी फड़कते, कभी लटककर चुहचुहाते हैं। बंदर आदि वनचर जीव एक वृक्षसे दूसरे और दूसरेसे तीसरेपर प्रमुदित हुवे कूद रहे हैं। घास चारों ओर लहरा रही है। वनवेलोंकी तो कहना ही क्या है? जिस प्रकार लज्जावती स्त्रीके चहूं ओर वस्त्र आच्छादित रहते हैं और उसका बदन (शरीर) रूप रंग कोई नहीं देख सक्ता है, उसी

प्रकार उन्होंने वृक्षोंको चारों ओरसे ढ़ांक लिया है। कहीं हाथियोंके समूह अपनी मस्त चालसे विचर रहे हैं, तो कहीं मृग विचारे सिंहादि शिकारी जानवरोंके भयसे यहां वहां दौड़ते फिर रहे हैं, कहीं सिंह चिंघाड रहे हैं, कहीं पुष्पवाटिकाओंमें नाना प्रकारके फूल जैसे चंपा, चमेली, जुही, मचकुंद, मोगरा, मालती, गुलाब आदि खिल रहे हैं। जिनपर सुगंधके लोभी भौंरा गुंजार कर रहे हैं, कहींपर बगीचोंमें नाना प्रकारके फल जैसे आम, जाम, सीताफल, रामफल, श्रीफल, केला, दाड़िम, जामुन आदि लग रहे हैं। जल-कुंडोंमें मछलियें किल्लोलें कर रही हैं, सरोवरोंमें अनेक भांतिके कमल फूल रहे हैं, तथा सारस व हंस आदि पक्षी क्रीड़ा करते हैं, कहीं हंसोंकी चाल देख बगुला भी उन्हींसे मिलना चाहता है; परन्तु कपट भेष होनेके कारण छिप नहीं सक्ता है। इत्यादि अवर्णनीय शोभा है।

उस नगरमें बड़े२ उत्तंग गगनचुम्बी महल बने हैं, और प्रत्येक महल जिन चैत्यालयोंसे शोभायमान है। चौपड़के समान बाजार बने हुवे हैं जिनमें हीरा, रत्न, माणिक, पन्ना, नीलम, पुखराज आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थोंका वाणिज्य होता है। कहीं कपड़ेकी गांठे दृष्टिपात होरही हैं, तो कहीं विसातखाना चल रहा है, कहीं फलफूल मेवोंका और कहीं अनाजका ढेर है। इसप्रकार बाजार भर रहे हैं। इस नगरमें बड़े२ विद्वान, पण्डित कवि आदिका निवास है। कहीं वेदध्वनि होती है, कहीं शास्त्र सम्वाद चल रहा है, कहीं पुराणी पुराणका कथन करते हैं, कहीं विद्यार्थी पाठशालामें अध्ययन करते हैं, मानो यह **विद्यापुरी** ही है। जहां ईतिभीति देखनेमें ही

नहीं आती है। चारों वर्णके मनुष्य जहां अपने२ कुलाचारको पालन करते हैं। सभी लोग प्रायः सुखी दृष्टिगत होते हैं, भिक्षुक सिवाय परम दिगम्बर मुद्रायुक्त अयाचीक वृत्तिके धारी मुनियोंके कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होते। जहां सदैव परम दिगम्बर मुनियोंका विहार होता रहता है और श्रावकगण मुनियोंके आनेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, जो अपने निमित्त तैयार की हुई रसोईमेंसे ही नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान कर पीछे आप भोजन करते हैं। वे सब द्विजवर्णके श्रावक दाताके सप्त गुणोंके धारक और श्रावककी क्रियामें अति निपुण हैं। इसप्रकार यह चंपापुरीकी ऐसी शोभा है मानों स्वर्गपुरी ही उतर आई है।

श्रीपालके गर्भका वर्णन।
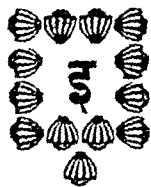
इसी **चम्पापुर** नगरमें महाराजा **अरिदमन** राज्य करते थे। इनके छोटे भाईका नाम **वीरदमन** था। इनका राज्य नीतिपूर्वक चारों ओर व्याप रहा था। कहीं भी किसी तरहका कोई कंटक दिखाई नहीं देता था। हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, प्यादे आदि सेना बहुतायतसे थी। बड़े२ शूरवीर दरबारमें सदा उपस्थित रहते थे। दूर२ तक सब ओर इनके राज्यनीतिकी प्रशंसा सुनाई देती थी। इनकी रानी **कुंदप्रभा** कुंदके पुष्पके समान अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी, तथा शील-धर्ममें सीतासे कम न थी। जिस प्रकार कामको रति, शशिको रोहिणी, विष्णुको लक्ष्मी और रामको सीता प्यारी थी, उसी प्रकार यह रानी भी अपने पतिकी प्रिया थी। पतिके सुखको सुख और

उसके दुःखको दुःख समझती थी। ऐसी पतिभक्ता स्त्रियोंकी ही संसारमें महिमा है; क्योंकि जो ऐसी कोई २ सच्चरित्रा स्त्री न होती, तो यथार्थमें स्त्री जाति आदर योग्य भी नहीं रहती। एक दिन यह रानी जब सुख शय्यापर सोई थी, तब उसने रात्रिके पिछले पहरमें एक स्वप्न देखा। जिसमें सुवर्ण सरीखा बहुत बड़ा पर्वत और कल्पवृक्ष देखे, और इसी समय स्वर्गसे एक देव चयकर रानीके गर्भमें आया।

इतनेमें प्रातःकाल हुवा, और दिनकरके प्रतापसे अंधकारका इसप्रकार नाश होगया, जैसे सम्यक्त्वके प्रभावसे मिथ्यात्वका नाश होजाता है। तब वह कोमलांगी सुशीला रानी शय्यासे उठी और अपने शरीरादिकी नित्य क्रियासे निवृत्त होकर मंदगतिसे गमन करती हुई स्वपतिके समीप गई, और विनयपूर्वक नमस्कार कर मधुर शब्दोंमें रात्रिको देखे हुवे स्वप्नका सब समाचार सुनाने लगी। राजाने भी रानीको उचित सम्मान पूर्वक अपने निकट अर्ध सिंहासनपर स्थान दिया, और स्वप्नका वृत्तान्त सुनकर कहा—"हे प्राणवल्लभे! तेरे इस स्वप्नका फल अति उत्तम है अर्थात् आज तेरे गर्भमें महातेजस्वी, धीर वीर, सकलगुणनिधान, **चरमशरीरी नररत्न आया है। पर्वत** देखा, इसका फल यह है कि तेरा पुत्र **बड़ा गभीर**, साहसी, पराक्रमी और बलवान होगा, तथा उसका सुवर्ण सरीखा वर्ण होगा। और **कल्पवृक्ष** देखा है इससे वह बहुत ही उदारचित्त, दानी, दीनजन प्रतिपालक और धर्मज्ञ होगा। तात्पर्य कि तेरे गर्भसे सर्वगुणसम्पन्न मोक्षगामी पुत्ररत्न होगा। इसप्रकार दम्पति (राजारानी) स्वप्नका फल जानकर बहुत ही प्रफुल्लित हुए, और सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

श्रीपालके जन्मका वर्णन।

दो यजके चन्द्रके समान गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा, और बाह्य चिह्न भी प्रगट होने लगे, जिससे शरीर कुछ पीलासा दिखने लगा, कुच उन्नतरूप और दुग्धपूरित होगये, नेत्र हरे २ होगये, और दिनोंदिन रानीको शुभ कामनायें (दोहला–इच्छा) उत्पन्न होने लगीं। इस प्रकार आनन्द-पूर्वक दश मास पूर्ण होनेपर जिसप्रकार पूर्व दिशासे सूर्यका उदय होता है, उसी प्रकार रानी कुन्दप्रभाके गर्भसे शुभ लग्नमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। जन्मते ही दुर्जन पुरुषों व शत्रुओंके घर उत्पात होने लगे, और स्वजन, सज्जन, पुरजनोंके आनंदकी सीमा न रही। घरोंघर नगरमें आनन्द वधाइयां होने लगीं, स्त्रियां मंगल गान करने लगों. याचकों [भिखारी] को इतना दान दिया गया कि जिससे वे सदैवके लिये अयाचक होगये। किसीको हाथी, किसीको घोड़े, किसीको रथ, किसीको ग्राम, क्षेत्र आदि जागीरें भी पारितोषकमें दी गई। नगरमें जहां तहां वादित्रोंकी ध्वनि सुनाई देती थी। तात्पर्य कि राजाने पुत्रजन्मका बड़ा हर्ष मनाया, और यह सोचकर कि ये सब धर्महीका फल है, श्री जिनेन्द्रदेवकी विधिपूर्वक पूजा-भक्ति भी की।

इस प्रकार जब बालक एक मासका हुआ; तब राजा-रानी बड़े उत्साहसे समारोह पूर्वक बालकको लेकर श्री जिन मंदिरको गये, और प्रथम ही भगवान्‌की अष्ट द्रव्यसे पूजा कर, पीछे वहां

तिष्ठ हुवे श्रीगुरुके चरणारविंदोंमें बालकको रखकर, विनयपूर्वक नमस्कार किया; तब मुनिराजने जिनको कि शत्रु मित्र समान हैं; उनको धर्मवृद्धि देकर धर्मोपदेश दिया, सो दम्पतिने ध्यानपूर्वक सुना, और अपना धन्यभाग्य समझकर मुनिको नमस्कार करके घरको लौट आये। और निमित्तज्ञानीको बुलाकर बालकके ग्रहलक्षण और नाम आदि पूछा। तब निमित्तज्ञानीने जन्म लग्न परसे विचार कर कहा कि—"हे राजा ! आपका पुत्र बहुत ही गुणवान्, पराक्रमी, कर्मशत्रुओंको जीतनेवाला, प्रबल, प्रतापी, शूरवीर, रणधीर और अनेक विद्याओंका स्वामी होगा। इसके जन्म लग्नमें ग्रह बहुत अच्छे पड़े हैं। मैं इस बालकके गुणोंको बचनद्वारा नहीं कह सकता, इसका नाम श्रीपाल रखना चाहिये।"

जब राजाने इस प्रकार होनहार बालकके शुभ लक्षण सुने तब आनंद और भी अधिक बढ़ गया। उन्होंने निमित्त ज्ञानीको अतुल संपत्ति देकर विदा किया, और बड़े प्यारसे पुत्रका लालनपालन करने लगे। अब दिनोंदिन श्रीपाल कुमार द्वितीयाके चंद्रमा समान वृद्धिको प्राप्त होने लगे। इनकी बालक्रीड़ा मनुष्योंके मनको हरनेवाली थी। कभी ये औंधे होकर पेटके बलसे रेंगते. कभी घुटनेके बलसे चलते, कभी कुदक कुदक कर पैर उठाते, कभी संकेत करते, और कभी अपनी तोतली बोली बोलते थे। कभी मातासे रूस कर दूर होजाते थे, और कभी दौड़कर लिपट जाते थे। वे संगके बालकोंमें ऐसे मालूम होते, जैसे तारागणोंमें चन्द्रमा शोभा देता है। इस प्रकारकी क्रीड़ाको देखकर माता पिताका मन प्रफुल्लित होता था

'बालककी सुन तोतरी बाता, होत मुदित मन पितु अरु माता'
इस तरह जब श्रीपालजी आठ वर्षके हुए; तब इनका मूंजीबन्धन तथा उपनयन संस्कार किया गया, अर्थात् जनेऊ पहिनाकर पंचाणुव्रत दिये गये, श्रावकके अष्ट मुलगुण धारण कराये, सप्त व्यसनका त्याग कराया, और यावत् विद्याध्ययनकाल पूर्ण न हो वहांतकके लिये अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत दिया गया।

इस प्रकार यथोक्त मंत्रोंद्वारा विधिपूर्वक पूजन हवनादि करके इनको गृहस्थाचार्यके पास पढ़नेके लिये भेज दिया। सो गुरुने प्रथम ही ॐकारसे पाठ आरम्भ कराकर थोड़े ही दिनोंमें श्रीपालकुमारको तर्क, छंद, व्याकरण, गणित, सामुद्रिक, रसायन, गायन, ज्योतिष, धनुषबाण (शस्त्रविद्या), पानीमें तैरना, वैद्यक, कोकशास्त्र, वाहन, नृत्य आदि विद्या और सम्पूर्ण कलाओंमें निपुण कर दिया। तथा आगम और अध्यात्म विद्यायें भी पढ़ाई। इस प्रकार श्रीपालजी समस्त विद्याओंमें निपुण होकर गुरुकी आज्ञा ले अपने मातापिताके समीप आये और उनको विनयपूर्वक नमस्कार किया। मातापिताने भी पुत्रको विद्यालंकृत जानकर शुभाशीर्वाद दिया। अब श्रीपालकुमार नित्यप्रति राज्यसभामें जाने और राज्यके कामोंपर विचार करने लगे।

श्रीपालका राजतिलक और राजा अरिदमनका कालवश होना।
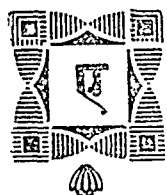
एक समय राजा अरिदमन सभामें बैठे थे कि इतनेमें श्रीपालकुमार भी सभामें आये, और योग्य विनयकर यथास्थान बैठ गये। उस समय राजाने अपनी वृद्धावस्था और श्रीपालकुमारकी सुयोग्यता देखकर तथा इनके अतुल पराक्रम, न्यायशीलता, और शूरवीरतादि गुणोंसे प्रसन्न होकर इनको राज-तिलक देनेका निश्चय कर लिया। और शुभ मुहूर्तमें सब राजभार इनको सौंपकर आप एकांतवास करने तथा धर्मध्यानमें कालक्षेप करने लगे। थोड़े ही समय बाद वृद्ध राजा अरिदमन कालवश हुए। जिससे राजा श्रीपाल, इनके काका वीरदमन, तथा माता कुन्द-प्रभादि समस्त स्वजन तथा पुरजन शोकसागरमें डूब गये। चारों ओर हाहाकार मच गया, तब बुद्धिमान राजा श्रीपालने पुरजनोंको अत्यन्त शोकित देख धैर्य (साहस) धारण कर सबको संसारकी दशा और जीव—कर्मका सम्बन्ध इत्यादि समझाकर संतोषित किया।

उन्होंने कहा कि मृत्यु तो सब पिछाकी हुई है, तुम्हारे पिता तो हम उपस्थित ही हैं. अतएव पिता के राज्यमें जिसप्रकार आप लोग सुख शांतिसे रहते थे, वैसे ही रहेंगे, मैं शक्तिभर आपको सुखी करनेका प्रयत्न करूंगा और आप भी न्यायपूर्वक मेरी सहायता करेंगे इत्यादि। इसके अनन्तर वे राज्यकार्यमें दत्तचित्त हुए। चारों दिशाओंमें अपने बुद्धिबल तथा पराक्रमसे अपने न्यायी तथा प्रजा-

वत्सलपनेकी कीर्ति विस्तृत कर दी, बड़े २ राजाओंको अपने आज्ञाकारी वनाये, दुर्जनोंको जीतकर वश किये, प्रजाको चौरादि दुष्टजनों कृत उपद्रवोंसे सुरक्षित किया। इनके राज्यमें लुच्चे, चोर, लवार, चुगलखोर, व्यभिचारी, हिंसक, आदि जीव कचित भी दृष्टिगोचर नहीं होते थे। सब लोग अपने २ धर्म कर्मोंमें आरूढ़ रहते थे। राजाज्ञा पालन करना उनका मुख्य कर्तव्य था। इसतरह न्याय नीतिपूर्वक इनका राज्य बहुत काल तक निष्कंटक चला।

श्रीपालको कुष्ट व्याधिका होना।

जिस समय श्रीपालजी सुखपूर्वक कालक्षेप कर रहे थे और प्रजाका न्याय तथा नीतिपूर्वक पालन करते थे, उस समय उनका यह ऐश्वर्य दुष्ट कर्मसे सहन नहीं हुआ, अर्थात् कामदेव तुल्य राजा श्रीपालके शरीरमें कुष्ट (कोढ़) रोग होगया, सब शरीर गलने लगा, और उसमेंसे पीप लोहू आदि वहने लगा, जिससे समस्त शरीरमें पीड़ा होने और दुर्गंध निकलने लगी।

यह दशा केवल राजाकी ही नहीं किन्तु राजाके समीपी सातसौ वीरोंकी भी हुई। दीवान, सेनापति, मंत्री, पुरोहित, कोतवाल, फौजदार, न्यायाधीश और अंगरक्षक सबकी एकसी दशा थी। प्रजागण इनकी यह दशा देख अत्यंत दुःखी थे, और अपने राजाकी भलाईके लिए सदैव श्रीजीसे प्रार्थना करते थे, कि किसी प्रकार राजा व समीपी सुभटोंको आराम मिले परन्तु कर्म बलवान् है।
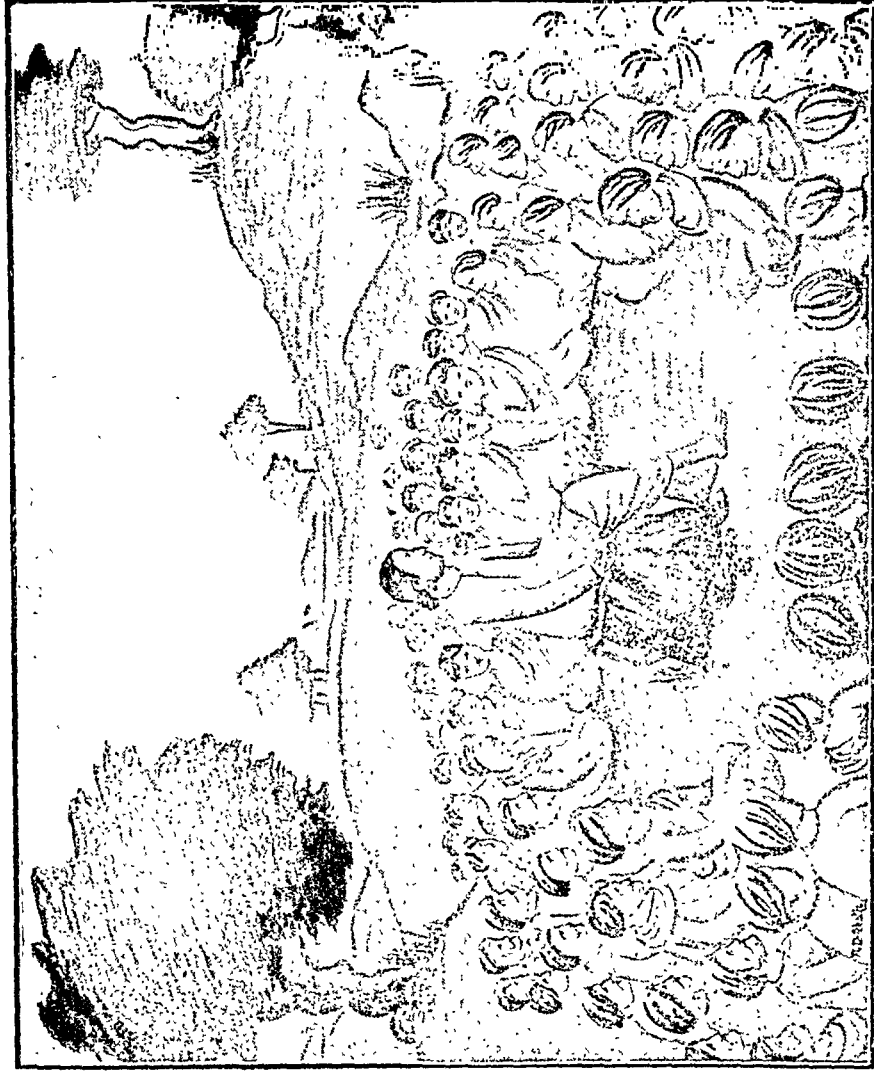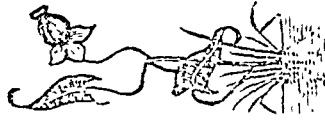
कुष्ठ रोगी राजा श्रीपालने सातसौं कोढ़ी वीरोंके साथ वनमें जाकर डेरा किया। [देखो पृष्ठ २०]

उसपर किसीका वश नहीं चलता। एक कविने ठीक ही कहा है—

कर्म वली अति जगतमें, सबहि जीव वश कीन।
महाबली पुनि वे पुरुष, करें कर्म जिन छीन॥

तात्पर्य—इन सबका रोग दिनोंदिन बढ़ने लगा, और शरीरसे बहुत दुर्गंध निकलने लगी। जिस ओरकी पवन होती थी उसी ओरके लोग इनके शरीरकी दुर्गंधसे व्याकुल होजाते थे। प्रजामें एक तो राजाके दुःखसे यों ही दुःख छा रहा था, दूसरे दुर्गंधिसे और भी बुरी दशा थी परन्तु प्रजाके लोग राजासे यह वात कहनेमें संकोच करते थे, इसलिये कितने तो घर छोड़कर बाहर निकल गये, और कितने ही जानेकी तैयारी करने लगे, अर्थात् सब नगर धीरे धीरे उजाडसा प्रतीत होने लगा, तब नगरके बड़े बड़े समझदार लोग मिलकर राजा श्रीपालजीके काका वीरदमनके पास गये और अपनी सब दुःख कहानी कह सुनाई। वीरदमनने सबको धीरज देकर कहा कि—आप लोग किसी प्रकार व्याकुल न हों। राजा श्रीपाल बड़े न्यायी और प्रजावत्सल हैं। वे आजकल पीड़ाके कारण बाहर नहीं निकलते, इसीलिये उनके कानों तक प्रजाकी दुःखवार्ता नहीं पहुंची है, इसीसे अबतक आप लोगोंको कष्ट पहुंचा है। अब शीघ्र ही यह खबर उनको पहुंचाई जायगी, और आशा है कि वे तुरन्त ही किसी भी प्रकारसे प्रजाके इस दुःखका प्रतीकार करेंगे। इसप्रकार संतोषित कर वीरदमनने सबको विदा किया।

श्रीपालका वीरदमनको राज्य देकर वनवासको जाना।

का का वीरदमन मनमें विचारने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? जो राजा नगरमें रहते हैं तो प्रजा भागी जाती है, और जो प्रजाको रखते हैं तो राजाको बाहर जाना पड़ेगा। यह तो गुड़ लपेटी छुरी गलेमें अटकी है जो बाहर निकालें तो जीभ कटे, और अंदर निगलें तो पेट फटे। इस प्रकार दुःखित हो रहे थे। और सोचते थे—

पंख विना पक्षी जिसो, पानी विन तालाव।
पात बिना तरुवर जिसो, रैयत बिन त्यों राव॥
नभ उड़गन ज्यों चंद बिन, ज्यों विन वृक्ष उद्यान।
जैसे धन विन मेह त्यों, प्रजा विना राजान॥
जैसे ब्राह्मण वेद विन, वैश्य वित्त बिन जान।
शस्त्र विना क्षत्री जिसो, विना प्रजा राजान॥

तात्पर्य–बिना प्रजाके राजा शोभा नहीं देता है। इत्यादि सोच विचार कर वीरदमन राजाके पास गये और अति ही प्रीति भरे नम्र वचनोंसे प्रजाकी सब दुःख कहानी कह सुनाई। तब राजा प्रजाके दुःखको सुनकर और भी व्याकुल हुए और आतुरतासे पूछने लगे–' काकाजी ! प्रजाको इस कष्टसे बचानेका कुछ यत्न है; तो निःशंक होकर कहो। क्योंकि जिस राजाकी प्यारी प्रजा दुःखी रहे, वह राजा अवश्य ही कुगतिका पात्र है। काकाजी !

मैं अपने कारण प्रजाको दुःखी रखना नहीं चाहता। मुझे इस बातकी विशेष चिन्ता है; क्योंकि मेरे शरीरसे बहुत ही दुर्गंध निकलती है, जिसको वास्तवमें प्रजा नहीं सह सकती, और मुझसे कह भी नहीं सकती, इसलिये शीघ्र ही आप ऐसा उपाय बताइये, ताकि प्रजा सुखी होवे।"

यह सुनकर काका वीरदमन बोले—"हे राजन्! मुझे कहनेमें यद्यपि संकोच होता है; तथापि प्रजाकी पुकार और आपके आग्रहसे एक उपाय जो मुझे सूझा है सो निवेदन करता हूं, आशा है उसपर पूर्ण विचार कर कार्य करेंगे। श्रीमानके शरीरमें जबतक यह व्याधि वेदना है, तबतक नगरके बाह्य उद्यानमें निवास करें, और राज्यभार किसी योग्य पुरुषके स्वाधीन कर देवें।

वीरदमनकी बात सुनकर श्रीपालजीने निष्कपटभावसे कह दिया कि मुझे यह विचार सब प्रकारसे स्वीकार है और मैंने भी यही विचार किया है। इसलिये मैं राज्यका भार इतने कालतक आपको ही देता हूं, क्योंकि इस समय इस कार्यके योग्य आप ही हैं, अर्थात् जबतक मेरे इस असाता वेदनीका उदय है, तबतक मैं अपना राज्य आपके द्वारा ही करूँगा, और इसका क्षय अर्थात् साताका उदय होते ही मैं पुनः आकर राज्य सम्हाल लूँगा, वहांतक आप ही अधिकारी हैं। इसलिये आप भलेप्रकार प्रजाका पालनपोषण कीजिये। उन्हें किसी प्रकारका कोई कष्ट न होने पावे। न्याय और नीतिपूर्वक वर्ताव कीजिये, और मेरी माता कुन्दप्रभाकी रक्षा भी पूर्ण रूपसे कीजियेगा, जिससे उनको मेरा वियोगजनित दुःख न व्यापने पावे। इत्यादि नाना प्रकारके आदेश

(शिक्षा) देकर राजा श्रीपालने समस्त (सातसौ) कोढ़ी वीरोंको साथ लिया और नगरसे बहुत दूर उद्यानमें जाकर डेरा किया ।

जब श्रीपालके वन जानेकी खबर प्रजाके लोगोंको मालूम हुई तो घरोंघर शोक छागया, वस्ती श्रीरहित शून्यसी दीखने लगी, सब लोग इस वियोग जनित दुःखसे व्याकुल हो रुदन करने लगे, अस्थायी राजा वीरदमनके भी टपटप आंसू गिरने लगे, माता कुंदप्रभा तो वावलीसी होगई। उनको अपने पति अरिदमनकी मृत्युका शोक तो भूला ही न था कि पुनः पुत्रके वियोगका दुःख आपड़ा । वे गद्गद स्वरसे विलाप करने लगीं । विशेष कहांतक कहैं, शोकके कारण दिन भी रात्रिवत् मालूम होने लगा । यद्यपि वीरदमनराजाने सबको धैर्य दिया, तथापि राजभक्त प्रजाको संतोष कहां ? हाय ! कर्मसे कुछ वश नहीं है । देखो । कैसी विचित्रता है कि:—

पुण्य उदै अरि मित्र ह्वै, विष अमृत ह्वै जाय ।
इष्ट अनिष्ट ह्वै परनमे, उदै पाप जब थाय ॥

निदान सब लोग कुछ काल बाद शोक छोड़ निज निज कार्यमें दत्तचित्त हुए । काका वीरदमन राज्य करने लगे, और राजा श्रीपाल उद्यानमें जाकर सातसौ वीरों सहित कर्मका फल भोगने लगे ।

मैनासुंदरीका वर्णन।

इसी आर्यखंडके **मालवदेश** (मालवा) में **उज्जैनी** नामकी एक **नगरी** है। वहांका **राजा पहुपाल** बहुत ही प्रतापी, शूरवीर, रणधीर, महा पराक्रमी और बलवान् था। वह नीतिपूर्वक प्रजाको पुत्रवत् पालन करता था। जिसके राज्यमें कुबेर सदृश धनी लोग रहते थे। विद्याका तो अपूर्व कोष दिखाई देता था। बड़े बड़े उत्तंग महल ध्वजा तोरण कंगूरों आदिसे सुसज्जित बने थे। नगरका विस्तार १२ कोस लम्बा और नव कोश चौड़ा था। बहुत दूर दूर तक राजाकी आज्ञा मानी जाती थी। वहां कोई दुःखी, दरिद्री नहीं देख पड़ते थे। बागबगीचे, कोट, खाई, सरोवर आदिसे नगरकी शोभा अवर्णनीय होरही थी। राजाके यहां **निपुणसुंदरी** पट्टरानी आदि बहुतसी रानियां थीं। पट्टरानी निपुणसुंदरीके गर्भसे दो कन्यायें हुई। एकका नाम **सुरसुंदरी** और दूसरीका नाम **मनासुंदरी** था। प्रथम कन्या सुरसुंदरी केवल संसारी विषयभोगोंकी आकांक्षा करनेवाली और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रको सेवन करनेवाली विवेकहीन किन्तु रूपवती थी और द्वितीय कन्या **मैनासुंदरी** जैसी रूपवती थी वैसी ही **गुणवती** और परम विवेकी जैनधर्ममें अत्यन्त लवलीन थी। इसका चित्त सरल और दयालु था। वचन मधुर नम्र और सत्यरूप निकलते थे, इसीसे यह सबको प्रिय थी।

एक दिन राजाने रानीसे सम्मति मिलाकर दोनों पुत्रियोंको पढ़ानेका विचार किया, सो प्रथम ही सुरसुंदरीको बुलाकर पूछा—हे बाले ! तुम कौनसे गुरुके पास पढ़ना चाहती हो ? तब सुरसुंदरीने

कहा, कि शैवगुरुके पास पढ़ूंगी। यह सुनकर राजाने तुरन्त ही एक शैवगुरुको बुलाकर उसे सब प्रकार संतोषित कर कन्या सोंप दी। तब वह ब्राह्मण (शैवगुरु) राजाको शुभाशीर्वाद देकर सुरसुंदरीको अनेक प्रकार कला चतुराई और विद्याएं सिखाने लगा।

फिर राजाने द्वितीय कन्याको बुलाकर पूछा—ऐ बाले! तुम किस गुरुके पास पढ़ना चाहती हो? तब मैनासुंदरीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—हे तात! मैं जिन चैत्यालयमें श्री **जिनमती आर्यिकाके** पास पढ़ना चाहती हूं। यह सुनकर राजा रानी अति प्रसन्न हुए, और कन्याको लेकर स्वयं अष्ट प्रकार द्रव्य संजोकर जिन चैत्यालय पधारे। वहां जाकर प्रथम ही श्रीजिनेन्द्रकी भक्तिभावसे पूजा करके फिर वहां पधारे हुए श्रीगुरुको नमस्कार किया। गुरुजीने धर्मवृद्धि दी। तब राजा और रानीने विनती की—हे स्वामी! इस बालिकाकी इच्छा विद्याभ्यास करनेकी है, इसलिये कृपाकर इसे विद्यादान दीजिये। मैनासुंदरीने भी कर जोड़ प्रार्थना की—हे कृपासिन्धु! धर्मावतार! मुझे विद्यादान दीजिये! तब श्रीमुनि बोले कि इस बालिकाको आर्यिकाके पास पढ़नेको बिठावो। तब राजाने गुरुकी आज्ञानुसार पुत्रीको आर्यिकाजीकी शरणमें छोड़ दिया और रानी सहित स्वगृहको प्रयाण किया। आर्यिकाजीने प्रथम ही उसे ॐकार जो समस्त द्वादशांगका सार है पढ़ाया—

मंगलमय मंगल करन, उत्तम शरणाधार।
ॐकार संसारमें, पार [illegible] ॥

ज्ञायक लोकालोकका, द्वादशांगको सार।
गर्भित पंच परमेष्ठि अरु, कर्म भर्म क्षयकार॥

इसप्रकार ॐकारसे आरंभ करके श्रीपरम तपस्विनी आर्यिकाजीने थोड़े ही दिनोंमें इस कुमारिकाको शास्त्र, पुराण, संगीत, ज्योतिष, वैद्यक, तर्कशास्त्र, सामुद्रिक, छंद, आगम, अध्यात्म, नृत्य, नाटक इत्यादि सर्व विद्या और मुख्य२ भाषाओंका ज्ञान करा दिया। जब वह सम्पूर्ण कलाओंमें निपुण होगई तब श्रीगुरुके निकट निश्चय और व्यवहार धर्म, दो प्रकारका चारित्र, चार ध्यान, षोडशकारण, दशलक्षण और रत्नत्रयादि व्रतोंका स्वरूप समझा।

इसप्रकार मैनासुंदरी जब सब विद्या पढ़ चुकी, तब अपने मातापितादि गुरुजनोंकी यथायोग्य विनय करती हुई कुलीन कन्याओंकी भांति सुखसे कालक्षेप करने लगी। और ज्येष्ठ पुत्री सुरसुंदरी (जो शिवगुरुके पास पढ़नेको गई थी) भी वेद, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक आदि सम्पूर्ण विद्या पढ़ चुकी। तब वह ब्राह्मण पंडित उसे लेकर राजाके समीप उपस्थित हुआ और आशीर्वाद देकर कन्या राजाको सौंप दी। इसपर राजाने उसे उचित पुरस्कार (इनाम) देकर संतोषित किया।

एक दिन राजा सुखासनसे मंत्री आदि सहित बैठे हुवे थे कि इतनेमें बड़ी पुत्री आई। राजा उसे तरुणावस्था प्राप्त देखकर पूछने लगे—हे पुत्री! तेरा लग्न (ब्याह) कहां और किसके साथ होना चाहिये? तुझे कौन वर पसंद है? तब सुरसुंदरी बोली—पिताजी पुण्यके योगसे ही विद्या, धन, ऐश्वर्य, रूप, यौवनादि

सब मिलता है, सो तो सब आपके प्रभावसे प्राप्त है ही, और लग्नादि कार्य गृहस्थोंके मंगल कार्य हैं, इन्हींसे सुखकी प्राप्ति होती है यह भी ठीक है। अच्छा तो यही है कि कन्याओंके योग्य वर पितादि गुरुजनोंके द्वारा तलाश किया जाय परन्तु यदि श्रीमान मुझसे ही पूछना चाहते हैं तो मुझे कोशांबी नगरीके राजाका पुत्र **हरिवाहन** जो सब गुण सम्पन्न, रूपवान तथा बलवान है; पसंद है, उसीके साथ मेरा लग्न होना चाहिये! तब राजाने यह बात स्वीकार की और बड़े आनंद व उत्साहसे सुरसुन्दरीका लग्न (ब्याह) शुभ मुहूर्तमें उसके इच्छित वरके साथ कर दिया।

इसीप्रकार किसी एक दिन छोटी पुत्री मैनासुन्दरी जब चैत्यालयसे आदीश्वरस्वामीकी पूजा कर गंधोदक लिये हुये पिताके पास आई, तो राजाने उसे प्रेमसे आवो बेटी! आवो! कहकर बैठनेका संकेत किया। पुत्रीने विनय सहित भेंट स्वरूप राजाके सन्मुख गंधोदक रख दिया और स्वयोग्य स्थानपर बैठ गई। राजाने पूछा—यह क्या लाई हो बेटी! पुत्रीने उत्तर दिया—पिताजी! यह गंधोदक (जिन भगवानके न्हवनका जल) है। इसको शरीरपर लगानेसे अनेकों व्याधियां जैसे कोढ़ (कुष्ट) दाद, गजकर्ण, खाज (खुजली) आदि रोग दूर होजाते हैं। कैसा ही दुर्गंधित शरीर हो परन्तु थोड़े ही समयमें इस गंधोदकसे अति सुगंधित स्वर्ण सरीखा निर्मल होजाता है। इस गंधोदकको सुरनर विद्याधर सभी मस्तकपर चढ़ाते हैं और अपने आपको इसकी प्राप्ति होनेपर कृतकृत्य समझते हैं। देखिए!

जब तीर्थंकर देवका जन्म होता है, तब इन्द्र प्रभुको सुमेरु

पर्वत पर ले जाकर एक हजार आठ कलशोंसे अभिषेक करता है। इस अभिषेकका जल इतना बहुत होता है कि उस जलके प्रवाहसे नदी वह जाती है। परन्तु वहांपर परमभक्त सुर नर विद्याधरोंके द्वारा मस्तकमें लगाते हुवे वह जल बिलकुल शेष नहीं रहता है। कहांतक हें? इसकी महिमा अपार है। इससे सब इच्छित फलकी प्राप्ति हो सकती है। इसलिए आप भी इसे वन्दन कीजिये अर्थात मस्तकपर लगाइये।

यह सुनकर राजाने सहर्ष गंधोदक मस्तकपर चढ़ाया, और पुत्रीको भक्तियुक्त देखकर प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक मस्तक चूंम मधुर वचनोंसे उसकी परीक्षा करने लगा-पुत्री! पुण्य क्या वस्तु है? और वह कैसे प्राप्त होता है?

मैनासुंदरी कहने लगी-हे तात! सुनो—

वीतराग सर्वज्ञ अरु, हित उपदेशी देव।
धर्म दयामय जानिये, गुरु निर्ग्रंथकी सेव॥
पुण्य उदधि यह जानिये, अहो तात गुण लीन।
स्वर्ग मोक्ष दातार ये, प्रगट रत्न हैं तीन॥

अर्थात्-अर्हंत देव, दयामयी धर्म और निर्ग्रन्थ गुरुकी सेवासे ही पुण्यबंध होता है। और तो क्या, इनकी सेवा अनुक्रमसे मोक्षकी देनेवाली होती है। राजा पुत्रीके द्वारा अपने प्रश्नका उत्तर पाकर और भी प्रसन्न हुवे, और विना विचारे पुत्रीसे कहने लगे-पुत्री! तू अपने मनके अनुसार जो रूपवान व पराक्रमी वर तुझे पसंद हो, सो मुझसे कह। मैं सुरसुन्दरीके समान तेरा लग्न भी तेरी पसन्द-

गीसे करदूंगा। यह पिताका वचन मैनासुंदरीके हृदयमें वज्रवत् प्रतीत हुआ। वह चुप ही रही, कुछ भी उत्तर मुंहसे नहीं निकला। मन ही मन सोचने लगी कि पिताने ऐसे वचन क्यों कहे? क्या कुलीन कन्यायें भी अपने मुंहसे वर मांगती हैं? नहीं २ शीलवान् कन्यायें कभी नहीं कह सकती हैं।

यथार्थमें जिसने जिनेन्द्रदेवको पहिचाना नहीं और निर्ग्रन्थगुरु दयामयी धर्म नहीं जाना है उनकी यही दशा होती है। विना दश-लक्षण व रत्नत्रय धर्मके जाने यथार्थमें विवेक नहीं होसकता। इत्यादि विचारोंमें निमग्न हुई पुत्री, पृथ्वीकी ओर इकटक देखती रही, तो भी राजाने इसका भाव न समझा, और फिरसे कहा-पुत्री! यह लज्जा योग्य बात नहीं है। तूने जो कुछ विचार किया हो अर्थात् जो वर तुझे पसंद हो सो कह।

इस प्रकार वारम्वार राजाके पूछनेपर वह विचारती थी कि राजाकी बुद्धि कहां चली गई! जो निर्लज हुवा, इस प्रकार फिर फिरसे प्रश्न कर रहा है? यदि इसने हमारे गुरुका वचन सुना होता, तो कदापि ऐसा वचन मुंहसे नहीं निकलता। इत्यादि। परन्तु जब पिताका विशेष आग्रह देखा, तब वह लाचार होकर बोली-

हे पिता! कुलवंती कुमारियां अपने मुंहसे वर नहीं मांगतीं। माता पितादि स्वजन वा गुरुजन जिसके साथ व्याह देते हैं, उनके लिये वही वर कामदेवके तुल्य होता है। चाहे वह अंधा, लूला, काना, बहरा, पांगुला, कोढ़ी, रोगी, राव, रंक, बाल, वृद्ध, रूपवान्, कुरूप, मूर्ख, पंडित, निर्दयी, निर्लज्ज हो अथवा सर्वगुण सम्पन्न हो,

परन्तु उन कुमारियोंके लिये वही वर उपादेय (ग्रहणयोग्य) है। कन्याओंका भला बुरा विचारना माता पिताके आधीन है। वे चाहे सो करें। मैंने श्रीगुरुके मुंहसे ऐसा ही सुना है, और शास्त्रोंमें भी यही कथा प्रसिद्ध है कि कच्छ सुकच्छ राजाकी कन्यायें यशस्वी और सुनन्दा भी जब तरुण हुई, तो उनके पिताने श्री आदीश्वर (ऋषभनाथ) स्वामीको परणाई थी, और आदिनाथकी दो कन्यायें ब्राह्मी और सुन्दरी जब तरुण हुई, और उनके लग्नका विचार नहीं किया गया, तो वे कुमारिकायें समस्त इन्द्रिय विषयोंको तुच्छ और दुःखरूप समझकर जिनदीक्षा लेकर इस पराधीन स्त्रीपर्यायसे सदाके लिये छूट गई, अर्थात् वे स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई। इसलिये हे पिता! अपने मुंहसे वर मांगना अनुचित वा लोकविरुद्ध है। बहिन सुरसुंदरीने जो वर मांग लिया, सो यह उनकी चतुराई नहीं है, परन्तु वे बेचारी क्या करें? खोटे गुरु (कुगुरु) की शिक्षाका प्रभाव ही ऐसा है। संगतिका प्रभाव अवश्य ही होता है। देखो कहा है—

तपे तवापर आय स्वाति जल बूंद विनट्ठी।
कमल पत्रपर संग वही मोती सम दिट्ठी॥
सागर सीप समीप भई मुक्ताफल सोई।
संगतिका प्रभाव प्रगट देखो सब कोई॥
नीच संगसे नीच फल मध्यमसे मध्यम सही।
उत्तमसे उत्तम मिले ऐसे श्रीजिन गुरु कही॥

देखिये—यह जीव भी इस संसारमें अनादि कर्मबन्धवशात् स्वस्वरूपको भूला हुवा पर (पुद्गलादि पर्यायों) में आपा मान चतु-

गतिमें भटकता है और उन कर्मोंके उदयजनित फलसें रागद्वेष बुद्धि कर सुखदुखरूप इष्टानिष्ट कल्पना करता है। तथा उसमें तन्मयी होकर हर्ष विषाद करता है परन्तु यह उसकी भूल है। क्योंकि जो कुछ सर्वज्ञने देखा है वह अवश्य होगा। इसलिये समताभाव रखना ही कर्तव्य है। जब कि समीचीन पुरुषको ही कर्मने नहीं छोड़ा, तो हमारे जैसे शक्तिहीन मनुष्योंकी क्या बात है?

इसलिए हे पिता! सुरसुंदरीका वह दोष नहीं था। वह केवल कुगुरुकी शिक्षाका ही फल था। माता पिताका कर्तव्य है कि वे जब अपनी कन्याओंको विवाह योग्य देखें; तब उत्तम कुलवान्, रूपवान, गुणवान् अपने बराबरीवाला सुयोग्य वर ढूंढ़कर उसके साथ व्याह दें। यथार्थमें वे ही कन्यायें प्रशंसनीय हैं जो गुरुजनोंके द्वारा किया हुवा सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर, उसीमें संतोष करती हैं क्योंकि प्रथम तो गुरुजनोंके द्वारा कभी अपनी कन्याओंके साथ अहित होनेकी आशा ही नहीं है और कदाचित् किसी अविचारी माता पितादि द्वारा भाग्यवश ऐसा ही होजाय, अर्थात् योग्य वर न भी मिले, तो वे उसे पूर्वोपार्जित कर्मका फल जानकर उसी प्राप्त वरकी सेवा करें। इसहीमें उनका कल्याण है। संसारमें इष्टानिष्ट वस्तुओंका संयोग कर्मके अनुसार स्वयमेव ही आकर मिल जाता है, इसमें किसीका कुछ दोष नहीं होता है, इसलिये पिताजी! आपको अधिकार है, चाहे जिसके साथ व्याहो।

यह बात सुनकर राजा क्रोधित होकर बोले—बस बस पुत्री! चुप रह। तेरा उपदेश बहुत होगया। क्या तेरे गुरुने तुझे यही पढ़ाया

है कि अपने उपकारीजनोंके उपकारका तिरस्कार करे ? तू मेरे घरमें तो नाना प्रकारके उत्तम भोजन करती है वस्त्राभूषण पहिनती है, और सब प्रकार सुख भोग रही है, तो भी कहती है कि मुझे तो सब मेरे कर्म हीसे मिलता है। यह तेरी कृतघ्नता है।

मैनासुंदरीने कहा-पिताजी ! गुरुका बन्धन यथार्थ है। आप मनमें विचार देखिये ! मेरा शुभ कर्मका ही उदय था कि आपके घर जन्म मिला, और ये सब सुख भोगनेमें आये। यदि मेरे अशुभ कर्मका उदय होता, तो किसी दरिद्रीके घर जन्म लेती, जहां कि दुःख ही दुःख मिलता। सो वहां तो आप कुछ सुख देने आते ही नहीं। भला, और भी संसारमें अनेक प्राणी दुःखी देखे जाते हैं, उन्हें व नारकी आदि जीवोंको व देवादिकोंको कौन दुःख व सुख जाकर देता है ? यथार्थमें **जीवको उसीका किया हुआ शुभाशुभ कर्म, सुख व दुःखका दाता है।**

राजाको पुत्रीके ऐसे वचन सुनकर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी समय उसने मनमें यह ठान ली कि अब इससे कर्मकी परीक्षा करना चाहिए, जो इतना गर्वयुक्त होरही है। कुछ देर चुप रहा और ऊपरी मनसे मैनासुंदरीकी प्रशंसा करता हुआ उठकर महलोंमें चला गया, और मैनासुंदरी भी हर्षित होकर अपने महलमें चली गई। नगरके लोग पुत्रीको देखकर बहुत ही आनंदित होते । कोई कहते थे, यह देवी है, कोई कहते थे विद्याधरी है, कोई कहते थे रति है इत्यादि। सारांश यह कि इसके रूपके समान और किसी स्त्रीका रूप नहीं था। यह षोड़शी (१६ वर्षकी) कन्या

वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हुई सुख पूर्वक रहने लगी, और निरंतर भोजन तैयार होनेपर श्रीमुनिके आगमनकालका विचार कर द्वारापेक्षण करती और मुनि आदि अतिथियोंको भक्तिपूर्वक आहारादि दान देती परन्तु यदि समय निकल जाता और कोई मुनि (अतिथि) दृष्टि न पड़ते तब आत्मनिंदा करती हुई (कि हाय ! आज मेरे कोई पूर्वोपार्जित अंतराय कर्मके उदयसे अतिथिका योग नहीं मिला इत्यादि) एक पुरुषके भोजनके योग्य रसोई निकालकर किसी दीन दुखीको देकर करुणा दानकी ही भावना भाती हुई भोजनको बैठती। इसी प्रकार नित्य प्रति वह कुमारिका षट्कर्म, देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दानमें सावधान रहती हुई सानन्द कालक्षेप करने लगी।

मैनासुंदरीका श्रीपालसे व्याह।

एक दिन राजा पहुपाल (मैनासुंदरीके पिता) को अकस्मात् मैनासुंदरीके उन बचनोंका स्मरण आगया "कि पुत्री कहती है कर्म ही प्रधान है" और इसलिये वह तुरत ही क्रोधयुक्त होकर मंत्रियोंके साथ पुत्रीके लिये हीन वरकी खोजमें निकला। चलते २ वह उसी चंपापुरके वनमें पहुंचा, जहां राजा श्रीपाल सातसौ सखाओं सहित पूर्वोपार्जित कर्मका फल (कुष्ट व्याधि) भोग रहे थे।

श्रीपाल राजा पहुपालको आते देखकर स्व-आसनसे उठ खड़े हुए। और यथायोग्य स्वागत करके कुशल समाचार पूछे, तथा

अपने पास तक आनेका कारण भी पूछा। राजा पहुपालके मंत्रियोंको यह देखकर विस्मय हो रहा था कि न मालूम राजा क्यों इस कोढ़ीसे मिल रहे हैं; जिसके आंगोपांग सडकर गिर रहे हैं, महां दुर्गंध निकल रही है इत्यादि। कि इतनेमें ही राजा पहुपालने श्रीपालसे कहा—मैं बनक्रीड़ाके लिये आया हूं, आपका आगमन यहां किस प्रकार हुवा है ? क्यों कर यह नगर बसाया है यह जानना चाहता हूं। तब श्रीपालने आद्योपान्त कुल कथा कह सुनाई। यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर बोला—मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हूं आपको जो चाहिये सो मांगो। श्रीपालने देखकर कहा—जो आप प्रसन्न हैं और वर देते हैं, तो आपकी पुत्री मैनासुन्दरी मुझे दीजिये। राजा पहुपालने सुनकर प्रथम तो कुछ मनमें क्रोध किया, पश्चात् मैनासुन्दरीके वाक्योंको स्मरण कर हर्षित होकर बोले—तथास्तु अर्थात् हे कुष्टीराय ! आपको मैंने अपनी लघु कन्या मैनासुन्दरी दी। चलो, शीघ्र ही मेरे साथ आवो, और कन्याको व्याह कर सुखी होवो। श्रीपाल हर्षित हो राजाके साथ चलनेको तैयार हुए।

परन्तु ऐसे अवसरमें मंत्रियोंसे भला कब चुप रह जाता है ? तुरन्त ही गद्गद हो, दीन वचनों द्वारा राजासे प्रार्थना करने लगे—हे नाथ ! बड़ा अनर्थ हो जायगा। आपको प्रथम ही गुप्त मंत्र कर ऐसा वचन देना चाहिए। कहां तो वह षोड़श वर्षकी सुकुमारी कन्या और कहां यह कोढ़ी आंगोपांगगलितशरीरी पुरुष ? ऐसा अनमेल सम्बन्ध उचित नहीं है। सब लोग हसेंगे और निन्दा करेंगे।

हे राजा ! कन्या अपने माता पिताके आधीन होती है, इसलिये उन्हें चाहिये कि योग्यायोग्यका पूर्ण विचार करें। यदि बालकोंसे कुछ अपराध भी हो जावे, तो भी माता पिता उसे क्षमा ही करते हैं। अपने थोड़ेसे मानादि कषायके वश हो अपने आधीन जीवोंको कष्ट पहुंचाना, कि जिससे वे सदाके लिये दुःखी हो जावें, कदापि उचित नहीं है।

नीतिमें भी कहा है कि—क्षत्रियोंका कोप बालक, वृद्ध, स्त्री, निर्बल, पशु, आधीन, शरणमें आये हुए और पीठ दिखानेवालोंपर नहीं होता है। चाहे जो हो, परन्तु फिर भी ये दयाके ही पात्र हैं इत्यादि नाना प्रकारसे मंत्रियोंने समझाया, परन्तु होनी अमिट है, राजाके मनमें एक भी न जंची। उसने उत्तर दिया—अरे मंत्रियों! तुम लोग इस विषयमें कुछ नहीं समझते। यथार्थमें ऐसा पुरुष तीन खंडमें तलाश करने पर भी नहीं मिलेगा, सिवाय इसके यह उत्तम कुलीन क्षत्री भी है। सब कारबार राजाओं सरीखे ही हैं। रोग तो शरीरका विकार है। माल, खजाना, सैन्य आदिकी कुछ भी कमी नहीं है। यह पुरुष परम दयालु न्याय नीति आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। जैसे अंधेके हाथमें बटेर पक्षीका आना कठिन है, इसी तरह जो इसे छोड़ जाऊं, तो फिर ऐसा वर मिलना कठिन है, इसलिए अवसर हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

मंत्रियोंने पुनः विनय की–हे स्वामी! स्त्रियोंको धन, वस्त्र, राज्य और ऐश्वर्य आदिका चाहे जितना सुख क्यों न हो, परन्तु यदि पतिका सुख न हो तो वह सब कुछ उन्हें तृणके समान हैं।

राजा पहुपाल और रानी निपुणसुन्दरी, सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरीकी परीक्षा कर रही हैं। (पृ० २३–२६)

श्री महोदय प्रेस–भावनगर.

“ श्री जैन आत्मानंद सभा ”ना बंधुकृत्यथी.

क्या आपने सीता, द्रौपदी, राजुल आदिकी कथा नहीं सुनी कि जिन्होंने संपूर्ण सुखोंपर धूल डालकर केवल अपने पतियोंके साथमें रहकर अनेक प्रकारके कष्टोंका सामना करना ही श्रेयस्कर समझा था सो जब उन्हें (स्त्रियोंको) यही सुख नहीं मिला, तो और सुख सब ऐसे हैं-जैसे कठ-पुतलीको शृंगारना। यद्यपि श्रीमान्‌का चित्त इस समय किसी कारणसे ऐसा होगया होगा, परन्तु पीछे बहुत पछतावेंगे। इसलिये सब काम सोच समझकर ही करना चाहिये।

यह सुनकर राजाने कहा-मंत्रियो! तुम्हारा वारम्वार कहना उचित नहीं है। मैं कदापि तुम्हारी बात नहीं मानूंगा। क्योंकि मैनासुंदरीके वचन मुझे तीरके समान चुभ रहे हैं, इसलिये इससे बढ़कर उसके कर्मकी परीक्षा करनेका अवसर दूसरा न मिलेगा। बस जो होना था सो होगया। अब मेरे वचनको फिरानेकी किसकी ताकत है? ऐसा कहकर तुरन्त ही राजा पहुपालने राजा श्रीपाल कोढ़ीको साथ लेकर स्वस्थान की ओर विहार किया। कुछ समय बाद जब वे नगरके निकट पहुचे तो श्रीपालको उनके सातसौ सखों समेत् नगरके बाह्य उपवनमें डेरा देकर, आप (राजा) प्रथम ही मैनासुन्दरीके निकट पहुंचा, और हर्षित होकर बोला—

पुत्री! अब भी तुम कर्मका हठ छोड़ो और विचार कर कहो कि कौन वर पसंद है तब पुत्री बोली-तात! जो मुनि क्रियामें सावधान होकर भी दर्शनभ्रष्ट हों जो धर्मात्मा होकर दयारहित हों, जो विवेकहीन ध्यानी हों, जो क्रोधी होकर त्यागी रहें, और जो पुत्र गुणवान होकर भी पिताके बचनको लोपनेवाले हों, तो

उनके सब गुण व्यर्थ हैं, ऐसे क्रिया, धर्म त्यागादि गुणोंमे कुछ लाभ नहीं है। इसलिए आप चाहे जिसमे मेरा पाणिग्रहण करादें वही मुझे स्वीकार है।

राजाको पुत्रीके इन नीतियुक्त वचनोंमे कुछ भी संतोष न हुआ। वह कहने लगे—पुत्री! मैंने तेरे लिये कोढ़ी वर तलाश किया है। तू उसे सहर्ष परण। मैनासुन्दरी पिताके वचन सुनकर मनमें बहुत ही हर्षित हो कहने लगी—हे तात! कर्मके अनुसार जो वर मुझे मिला, वही स्वीकार है। इस जन्ममें तो मेरा स्वामी वही कोढ़ी है। उसके सिवाय संसारके और सब पुरुष आपके (पिताके) समान हैं। यद्यपि मैनासुन्दरीने ये वचन प्रसन्नमनसे कहे थे, परन्तु राजाको नहीं रुचे। वह बोला—पुत्री! तू बहुत हठीली है। तेरा स्वभाव दुष्ट है। तू विचारशून्य है। अब भी हठ छोड दे। परन्तु मैनासुन्दरीने तो मनसे श्रीपालको ही परण लिया था। वह बोली—पिताजी! आप चिंता न करें, कर्मकी गति विचित्र है। शुभ उदयसे अनिष्ट वस्तु इष्टरूप, और अशुभ उदयसे इष्ट भी अनिष्टरूप परणमती है, इसलिये अब जो कुछ होना था हो सो हो गया इसमें कुछ सोचने विचारनेकी आवश्यकता नहीं है।

जब राजाने देखा कि अब तो पुत्री भी हठ पकड़ गई है, तब लाचार होकर ज्योतिषीको बुलाया। और विवाहका उत्तम मुहूर्त पूछने लगा। तब ज्योतिषीने लग्न विचार कर कहा—नरनाथ! आजका मुहूर्त बहुत ही अच्छा है। ऐसा मुहूर्त फिर वर्षों वर्षों तक भी नहीं आ सकता। क्योंकि सूर्य, चंद्र और गुरु ये तीनों वर

और कन्याके लिये बहुत ही अच्छे हैं। ऐसा उत्तम और निकट मुहूर्त सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। और विप्रको दक्षिणा देने लगा, तब उसने हाथ लम्बा नहीं किया। अर्थात् दान नहीं लिया। जब राजाने इसका कारण पूछा, तो वह वर्तमान वरकी स्थितिपर शोक प्रकाशित करके कहने लगा—

हे राजन्! संसारमें प्राणी कर्मसे बंधा हुआ है। आपका इसमें क्या दोष है? कन्याका भाग्य ही ऐसा है जो रूप और गुणकी खानि होते हुवे भी कोढ़ीके साथ व्याही जारही है। हे राजा! आपको ही विचार करना चाहिये था। आप ऐसे चतुर, न्यायी और नीतिवान होते हुए भी कैसे भूल गये? आपकी बुद्धि कहां चली गई, जो यह अनर्थ करनेपर उद्यत होगये? मालूम होता है कि अब राज्यकी कुछ अशुभ होनहार है।

ऐसा कहकर विना ही द्रव्य लिये वह ब्राह्मण घरको चला गया। अब क्या था, सब नगरमें तथा आसपास चारों ओर सोते बैठते खाते पीते हर समय यही कथा होने लगी। जो कोई इस बातको सुनता था, वही राजाकी बुद्धिको धिक्कारता था। जब विवाह कार्य आरम्भ होने लगा, तब पुनः मंत्रियोंने आकर निवेदन किया कि हे राजन्! देखो, अनीति होती है। इसका परिपाक अच्छा नहीं है। एक अबला बालिकाके साथ ऐसा अनर्थ करना सर्वथा अनुचित है। आप प्रजा-पालक हैं, फिर तो आपकी यह तनुजा है। देखिये, विचारिये। जो राजा मंत्रियोंके वचनपर विचार नहीं करते हैं, जो सुभट रणत्याग कर भागते हैं, जो शूरवीर क्रोध

छोड़ देते हैं, जो साधु क्रोध धारण करते हैं, जो दारा विवेकहीन होते हैं, जो साधु वाद करते हैं, जो रागी उदास रहते हैं, जो चोर अपना भेद बता देते हैं, जो रोगी स्वादके ग्राही होते हैं, जो साधु उधार लेनदेन करते हैं, जो वेश्या व्रत लेकर बैठती है, जो स्त्रियां स्वतंत्र हो घरोंघर डोलती हैं, जो पात्र क्रियारहित होते हैं और जो तपस्वी लोभी होते हैं वह अवश्य ही नष्ट होजाते हैं। इसलिये बहुत क्या कहा जाय? अब भी चेत जाओ और पुत्रीको दारुण दुःखमें डालनेसे बचाओ।

हे महाराज! अबतक तो आप सदैव मंत्र (विचार) के अनुसार चलते थे; परन्तु आज क्या होगया है, जो ऐसी रूप और गुणोंकी खानि पुत्रीको एक कोढ़ी पुरुषको दे रहे हो? हम लोग आपसे सत्य और आग्रहपूर्वक कहते हैं कि इसके बदले आपको बहुत दुःख उठाना पड़ेगा, इसलिए आप हठ छोड़ दीजिये।

यह सुनकर राजा कहने लगा—हे बुद्धिमान मंत्रियो! तुम विना विचारे ही क्यों व्यर्थ बकवाद करते हो? मैं जो तिलक कर चुका हूं, क्या वह भी कोई फिरा सकता है? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सक्ता। जो कह चुका हूं, वही होगा। राजाओंके वचन नहीं जाते, चाहे प्राण भले ही चले जांय। कहा है—

"सिंह लगन कदली फलन, नृपति वचन इकवार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े दूजी वार"॥

मंत्रियोंने फिर भी साहसकर कहा—

हे राजा! आपका कुल अति निर्मल है, उसको आप कलं-

कित न करें। यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर व्यर्थ अपयश लेना ठीक नहीं है। आपके जैसा यह निंद्य कार्य कोई अविवेकी भी नहीं करेगा। इसलिये ऐसा नीच कृत्य आपको कदापि काल नहीं करना चाहिए। यद्यपि मंत्रियोंका कहना राजाके हितके ही लिये था; परन्तु जैसे पित्त ज्वरवालेको मिठाई भी कडुवी मालूम होती है, उसी प्रकार हठ रोगसे पीड़ित तीव्र कषायके उदयमें राजाको मंत्रियोंके वचन बहुत ही बुरे मालूम हुए। वह क्रोधसे भरे हुए लाल लाल नेत्र करके बोला—बस, बस, बहुत हुवा, अब चुप रहो! अबतक मैंने तुम्हारा मान रखा, और कुछ भी नहीं कहा। मेरे मनमें कुछ और है, और तुम लोग कुछ और ही कहते हो। सेवकका काम है कि स्वामीकी इच्छानुसार प्रवर्ते। यदि अब तुम लोग कुछ भी विरुद्ध बोलोगे, तो दण्डके भागी होवोगे।

मंत्रीगण राजाके क्रोधभरे वचन सुनकर बोले—हे महाराज! हम लोग निर्भय होकर प्रार्थना करते हैं। हम लोगोंको दण्डका कुछ भी भय नहीं होता; क्योंकि हमारे कुलकी यही रीति है कि स्वामीका हित जिसप्रकार होता देखें, उसी प्रकार कार्य करें, और अयोग्य प्रवृत्तिको यथाशक्ति रोकनेका पूर्ण प्रयत्न करें! यदि हमलोग ऐसा न करें, तो हमारे कुलकी रीति तथा धर्म जाता है। और हम कर्तव्यसे च्युत होजाते हैं। इसी प्रकारसे राजाओंका भी यही स्वभाव होता है कि उनको जब कोई विशेष कार्य करना होता है, तब मंत्रियोंको बुलाकर उनसे मंत्र करते हैं और सब मिलकर जो राय अधिक और प्रशंसनीय होती है, उसीके

अनुसार कार्य करते हैं। यही रीति परम्परासे चली आती है। इसीसे हम लोग वारम्वार कहते हैं। इसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है। स्वामीके कार्य करनेमें हमें जीने और मरनेका कुछ भी संशय नहीं रहता है। हे राजन्! विचार कीजिये, और हठका परित्याग कीजिए।

इसप्रकार मंत्रियोंने यद्यपि बहुत समझाया, परन्तु राजाके चित्त पर एक भी बात न जमी—जैसे चिकने घड़ेपर पानी नहीं ठहरता है। वह निःशंक होकर बोला—अरे मंत्रियो! अब चतुराई करनेका समय नहीं है। आप लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञानुसार विवाहकी तैयारी करो, और मैनासुंदरीके वरको शोभा (व्याहका एक नेग है जो अगवानीके समय एक सुंदर बैल सजाकर उस पर बहुत सुवर्ण मुद्राएं तथा अन्य रत्नादि लादकर वरको भेंट स्वरूप देते हैं) पहुंचावो।

तब लाचार होकर मंत्री अपनासा मुँह लेकर उठ खड़े हुए, और आज्ञानुसार विवाहोत्सवका प्रबन्ध करने लगे, सो ठीक ही है। कहा है—

नौकर बंधुवा भामिनी, ऋणी कर्मयुत जीव।
ये पांचों संसारमें, परवश भ्रमै 'सदीव'॥

इसप्रकार वे मंत्री लोग तथा स्वजन परजन सभी राजाज्ञासे विवाहोत्सवमें सम्मिलित हुए, और विविध प्रकारके मंगलगान नृत्य वादित्रादि होने लगे। सभामण्डप सुवर्ण और रत्नोंसे सजाया गया। जिसमें मोतियोंके वन्धनवार (तोरन) लटकाये गये। विवाहमण्डप हरे बांस पल्लव और पुष्पोंसे सजाया गया। सुवासन (सौभाग्यवती)

स्त्रियाँ मोतियोंके चूर्णसे चौक पूरने लगीं, इत्यादि, यह सब कुछ होता था, परन्तु जैसे जलमें रहते हुए भी कमल जलसे भिन्न ही रहता है, उसी प्रकार इन सब उत्सवमें सम्मिलित होनेवालोंकी दशा थी। सभी लोग राजाकी बुद्धिको मन ही मन धिक्कारते और कन्याकी दशाका विचार कर करुणार्त होरहे थे। कहीं बाजे बजते थे और शोकागारसा बन रहा था। तात्पर्य—वह एक ऐसा विचित्र आश्चर्य-कारक अवसर था कि नवागन्तुक पुरुष (जो इस भेदको न जानता हो) की बुद्धि बड़े गोरखधंधेमें पड़ जाती थी। वह यह नहीं जान सक्ता था, कि यह विवाहोत्सव है, या कोई शोक-समारोह है।

यद्यपि विवाहकी तैयारियाँ जैसी राजाओंके यहाँ होनी चाहिये सब वैसी ही संपूर्ण प्रकारसे हुईं थीं; परन्तु कन्याके भवितव्यका विचार मनमें उत्पन्न होते ही वह सब राग रंग भूल जाता था। सब लोग चिंतित थे; परन्तु राजा पहुपालको तो यह पड़ रही थी कि कब फेरे फिरें। कारण कि कहीं विघ्न न आजावे। इसलिये वह मंत्रियोंसे बोला-मंत्रियो! मुहूर्त आपहुँचा है। तुम लोग शीघ्र ही जाकर वरको सादर ले आओ। मेरा चित्त अत्यन्त विह्वल होरहा है कि कब जँवाईको देखूं और उसकी यथाशक्ति शुश्रूषा करूँ।

मंत्रीगण जो अपने सब उपाय करके निष्फल होचुके थे सो विना कुछ कहे ही आज्ञानुसार वहाँ पहुँचे, जहाँ कुष्टीराज श्रीपालको डेरा दिया गया था, और बड़े समारोहसे वरराजाको लेआये। जो लोग अगवानीको गये थे वे वरको देख देखकर राजाको मन ही मन धिक्कारते और उसकी हँसी करते थे। राजा पहुपालने किसीकी ओर

कुछ भी ध्यान न देकर बड़े आदरसे जँवाईको आगे जाकर स्वागत किया और उच्चासन देकर बैठाया तथा उबटन कराकर क्षीर नीर तथा सुगन्धसे भरे हुए कंचनके कलशोंसे अभिषेक कराया। नाना प्रकारसे तेल, फुलेल, अरगजा, इत्र आदि शरीरमें मर्दन किये, परन्तु जैसे मैले वर्तन पर कलई नहीं हो सक्ती, उसी प्रकार इन उपचारोंसे श्रीपालके शरीरकी दुर्गंधी कुछ भी कम न हुई।

निदान वरको वस्त्र, आभूषण, मौर, मुकुट, कंकण जामा इत्यादि सब कुछ पहिराए गये, परन्तु उस समयका यह सब शृंगार ऐसा था, जैसे बन्दरको शृंगारना; क्योंकि एक ओर वस्त्राभूषणोंकी कांति जगमगाती थी, दूसरी ओर पीप और रुधिरकी धार वह रही थी। इस प्रकार वर घोड़े पर स्वार होकर विवाहमंडपमें आया। कामनी घोरीं बनरा (फेरे फिरनेके पहिलेके गीत) गाने लगीं। उस समय बहुत भीड़ थी। कारण कि एक तो राजघरानेका उत्सव और दूसरे यह विचित्र गोरखधंधा। उस समय वहां उस बड़ी भीड़में लोगोंके मुँहसे नाना प्रकारके भाव प्रगट होते थे। किसीके चेहरेसे शोक, किसीकेसे चिन्ता, किसीकेसे भय, किसीकेसे ग्लानि, किसीकेसे आश्चर्य, किसीकेसे क्रोध और किसीकेसे विरागता सी झलकती थी। सभी लोग विचारोंमें निमग्न होरहे थे। और कितने ही लोग केवल कौतुकरूपसे ही सम्मिलित हुये थे। अतएव उन्हें क्या, चाहे किसीका बुरा हो या भला, अपने कौतुकसे काम। उस समय वहां इतनी भीड़ हुई कि आकाश धूलसे आच्छादित होजानेसे सूर्यका प्रकाश भी ढ़ंक गया, मानों कि सूर्य लज्जासे ही

छिप गया हो, किसीका कुछ भी भाव हो परन्तु श्रीपालके आनन्दका तो ठिकाना नहीं, था सो ठीक ही है।

जिस स्त्री-रत्नके लिये संसारमें जीव परस्पर घात करके तन, धन और प्राणोंका भी नाश कर बैठते हैं। यदि वही स्त्री-रत्न ऐसी अस्वस्थ अवस्थामें भी विना प्रयास प्राप्त होजावे तो फिर भला क्यों न हर्ष हो ? होना ही चाहिये। इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें गृहस्थाचार्यने विधिपूर्वक पंचपरमेष्ठी, अग्नि और पंच आदिकी साक्षीपूर्वक दोनोंका पाणिग्रहण करा दिया। जब विवाहकी विधि हो चुकी, तब मैनासुंदरी अपने पतिके साथ उनके आश्रमको पहुंचाई गई। जो लोग भी सुंदरीको पहुंचाने गये थे, उन सबके चेहरेसे उस समय तक भी शोक, भय, लज्जा आदि भाव प्रदर्शित होते थे। प्रथम तो पुत्रीकी विदाई (जुदाई) ही दुःखदाई होती है, तिसपर उसको ऐसे दुर्निवार दुःखका होना।

इसीसे सब लोगोंकी आंखोंसे अश्रुपात होरहे थे। ऐसा मालूम होता था कि मानों श्रावण भादोंकी वर्षाकी झड़ी ही लग रही हो। राजा पहुपाल स्वयं चित्तमें बहुत खेदित और लज्जित हुए, परन्तु क्या करें ? कर्मकी रेखपर मेख मारनेकी किसकी सामर्थ्य है ? किसीके मुंहसे शब्द नहीं निकलता था। चारों ओर हा, हा खेदकी ध्वनि होरही है। रानी (मैनासुन्दरीकी माता) तथा बड़ी बहिन मैनासुंदरीके गलेसे लिपटकर जोर जोरसे रुदन करके कहने लगीं—

हाय पुत्री ! तूने न मालूम पूर्व जन्मोंमें कैसे २ कर्म किये थे, जिनसे इस अथाह दुःख–सागरमें तू डुबोई गई ! हाय ! तू

कैसे इस आयुको पूर्ण करेगी? हाय! पुत्री! क्यों तूने इच्छित वर न मांग लिया? हाय! कहां तू महासुकुमारी बालिका और कहां वह कोढ़ी पति? अरे निर्दयी कर्म! तुझे किंचित् भी दया नहीं आई? भला, अबलापर तो यह अन्याय न करता।

हे स्वामी! आप दयासिंधु प्रजापालक थे, परन्तु आपके दया क्षमा सन्तोष आदि गुण कहां चले गये? अयुक्त कार्य क्यों किया? उस समयके इनके रुदनको सुनकर पत्थर भी पिघल जाता तो मनुष्यकी बात ही क्या है?

राजा पहुपाल स्वयं नेत्रोंमें आंसू भर गद्गद कण्ठसे रुदन कर कहने लगे–हाय कुमति! तुझे और कहीं ठिकाना न मिला, जो आकर मेरे ही हृदयमें वासकर, एक भोली कन्याको ग्रास बना लिया! हाय! मैंने हठात् मंत्रियोंके वचन नहीं सुने, उनका ही तिरस्कार कर दिया! पुरोहितजीने समझाया तौभी न माना। मैंने अपने थोड़ेसे मिथ्याभिमानके वश होकर पुत्रीको आजन्मके लिये दुःखी किया! हाय मैना! क्या करूं? निःसन्देह तेरा कहना सत्य है। वास्तवमें तेरे पूर्वोपार्जित कर्मोंका उदय ही ऐसा था, जिसका मैं निमित्त बनगया। अब क्या करुं? हे पुत्री! तू अपने इस कठोर-हृदय अपराधी पिताको, अपनी उदारतासे क्षमा कर!

जहां इस दृश्यको देखकर कठोरसे कठोर हृदयी पुरुष भी एक वार जी खोलकर रो देता, वहां उस सती शीलवती सुन्दर कोमलांगी बालिकाके चेहरेपर अपूर्व खुशी झलक रही थी।

वह इन सब दर्शकोंकी चेष्टा पर घृणा प्रकट करती हुई सोचती थी कि न मालूम क्यों ये लोग ऐसे शुभ अवसरपर अमंगल-

सूचक चिह्न प्रकट करते हैं ? क्यों नहीं शीघ्र ही मेरी बिदा कर देते ? क्योंकि ज्यों ज्यों ये लोग देरी कर रहे हैं त्यों त्यों मुझे स्वामीकी सेवामें अंतर पड़ रहा है, और साथ ही मेरे भाग्यको दोष देते हुए मेरे पतिके लिये कोढ़ी आदि निंद्य वचन कह रहे हैं। जब उससे नहीं रहा गया तब दीर्घस्वरसे बोली—

" हे माता, पिता, बन्धु आदि गुरुजनो ! यद्यपि आप सब लोग मेरे शुभचिंतक हैं, और अबतक आप लोगोंने जो कुछ भी मेरे लिये किया, वह सब मेरे सुखके हेतु था; परन्तु अब आप लोगोंके ये वचन मुझे शूलसे भी तीक्ष्ण मालूम होते हैं। मैं अपने पतिके लिये ये बचन अब सुनना नहीं चाहती। क्या आप लोग नहीं जानते कि स्त्रीका सर्वस्व पति ही है ? जो सती, शीलवती कुलवती स्त्रियां हैं, वे अपने पतिके लिये ऐसे वचन कदापि काल सुन नहीं सकती हैं। स्त्रियोंको उनके कर्मानुसार जैसा वर प्राप्त हो जाय वही उनको पूज्य और प्रिय है। उसके सिवाय संसारमें उनके लिये अन्य सब पुरुषमात्र कुरूप अथवा पिता भ्राता व पुत्र तुल्य हैं।

यद्यपि आप लोग मेरे पतिको कुरूप और रोगसहित देख रहे हैं; परन्तु मेरी दृष्टिमें वे कामदेवसे किसी प्रकार भी कम सुन्दर नहीं हैं। व्यर्थ आप लोग पश्चात्ताप कर रहे हैं। मुझे संतोष है, और मैं अपने भाग्यकी सराहना करती हूं कि जो ऐसे शूरवीर पराक्रमी सर्वगुण सम्पन्नरूपवान् वरकी प्राप्ति हुई है।

यदि शुभोदय होगा, तो थोड़े ही समय बाद आप लोग इन्हें देव गुरु धर्मके प्रसादसे रोगमुक्त देखेंगे। इसलिये आप लोग शांति

रक्खें, किसी प्रकार चिंता न करें, संसारमें सब जीव कर्माधीन हैं। **सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख** इसी प्रकार संसारका चक्र चलता है। जो कर्म उदय आता है, उसकी **निर्जरा** भी होती है। **मनुष्यका कर्तव्य है कि उदयजनित अवस्थाको पूर्व कर्मका फल समझकर समभावोंसे भोगे,** न कि उसमें हर्ष विषाद कर संक्लेश भावोंसे आस्रव व बंध करे। समता भावोंसे शीघ्र ही कर्मोंकी निर्जरा होती है और पुण्य कर्मोंमें स्थिति और अनुभाग बढ़ जाता है। और यदि हर्ष विषाद कर भोगता है, तो उदयजनित कर्मोंका फल कम तो होता नहीं है; किन्तु विशेष दुःखप्रद मालूम होता है और तीव्र कषायोंके द्वारा पुनः अशुभ कर्मबन्ध करके आगेके लिये दुःखका बीज बोता है, क्योंकि जीव कर्म भोगनेमें परतंत्र है; परन्तु कर्म करनेमें स्वतंत्र है। सो उसे चाहिये कि कर्म करते समय सावधान रहे ताकि अशुभ कर्म बंध न होने पावे और कर्मफलको समभावोंसे सहन करे, ताकि यहां भी भोगनेमें अतिशय कष्ट न मालूम होवे और आगामी आस्रव तथा बन्धका कारण भी न हो।

हे स्वजनगणो! किसीको सुख दुःख देनेवाला संसारमें कोई भी नहीं है। केवल संसारी जीवोंको उनके अंतरंगमें उत्पन्न हुई इष्टानिष्ट कल्पना ही सुख व दुःखका मूल कारण होती है; क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो वस्तु एकको इष्ट है वही वस्तु किसी दूसरेको अनिष्ट मालूम होती है। यदि कोई वस्तु इष्ट व अनिष्ट होती, तो वह सबको समान रूपसे इष्ट व अनिष्ट होना चाहिये थी, सो ऐसा तो नहीं देखा जाता।

देखिये, जिस महान् पुरुषको आप लोग अनिष्ट बुद्धिसे देखते हैं, वही पुरुष मुझे इष्ट प्रतीत होता है, इसलिये आप लोग इस चर्चाका यहां अंत कर दीजिये और आगामी अपना समय इस प्रकारकी चिंतामें न बिताइए, मेरी सबसे यही प्रार्थना है । इसमें मेरे पिताजीका किंचित् मात्र भी दोष नहीं है, इसलिये कदापि आप लोग उनको कुछ भी कहकर व्यर्थ क्लेशित न कीजिये ।

पुत्रीके ऐसे आगमानुकूल गंभीर वचन सुनकर सब ओरसे धन्य २ की ध्वनि होने लगी, सबको संतोष हुआ । और सबलोग अपने अपने स्थानको पधारे । राजाने भी कन्याको बहुत कुछ दान दहेज आदि देकर बिदा किया । यद्यपि विस्तारके भयसे सब दहेजका वर्णन नहीं होसकता है, तो भी थोड़ासा कहते हैं । राजा पहुपालने विदाके समय सब स्वजन परजन व पुरजनोंको इच्छित भोजन, और अपने जँवाई राजा श्रीपालको छत्र, चमर, मुकुट आदि अमूल्य रत्नोंसे सुसज्जित किया, तथा पांचों कपड़े पहिराये । पुत्रीको भी संपूर्ण प्रकारसे बहुमूल्य वस्त्र आभूषण दिये और साथमें सेवा करनेके लिये हजारों दास दासियां, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, पालकी, गाय, भैंस और ग्राम, पुर पट्टन आदि दिये, तथा क्षमा मांगकर उनको बिदा किया । कुछ समय तक नगरमें यही चर्चा रही । फिर ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों लोग इस बातको भूलने लगे । सो ठीक ही है—

"कोई किसीके दुःखको, नाहीं सकत बटाय ।
जाको घां भूमी गिरो, सो ही लूखो खाय ॥"

श्रीपालका कुष्ट रोग दूर होना।

जबसे श्रीपालजी मैनासुंदरीको विदा कराकर घर लिवा लाये तभीसे उनको साताके चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। ठीक है—**शीलवान् नर जहाँ जहाँ जाय, तहाँ तहाँ मंगल होत वनाय ॥** मैनासुन्दरी तन, मन, वचनसे ग्लानि रहित होकर पतिसेवामें लीन होगई। वह पतिपरायणा अपने हाथोंसे पीप रुधिर इत्यादि धोती, पट्टी बांधती, स्नान कराती, उबटन लगाती, लेप करती, कोमल शय्या बिछाती, वस्त्र बदलाती, प्रकृति और रुचिके अनुसार पथ्य भोजन कराती और श्रीजीसे निरंतर रोगकी निवृत्तिके लिये प्रार्थना करती थी। नित्यप्रति अतिथियोंको भोजन करानेके पश्चात् पतिको भोजन कराकर पीछे आप भोजन करती। रात्रिको भी जागरण कर पतिसेवामें तत्पर रहती। इस प्रकार जब वह कोमलांगी दिन रात कठिन परिश्रम पूर्वक पतिसेवा किया करती थी, तब उसे इसप्रकार उद्यमवंत देखकर एक दिन श्रीपालजी बोले—

प्रिये ! कहां तो तुम अत्यन्त कोमलांगी निर्मल शीलादि गुणों और सुरूपकी खानि हो कि तुम्हारे मुखको देखकर चन्द्रमा भी शर्मा जाता है। तुम्हारे मधुर शब्द कोयलको भी मोहित करनेवाले हैं। तुम्हारी ग्रीवा मोरसे भी अधिक शोभा देरही है, नेत्र मृगीसे भी अधिक भोलापन प्रगट करते हैं। कपोल विकसित गुलाबकी कलीकी शोभाको हरनेवाले हैं। नाशिका तोतेकी चोंचके समान, होठ अरुण कुसुमकी नांई शोभा देते हैं। दांतोंकी पंक्ति मोतियों-

कीसी आभा प्रगट करती है। कुच सुवर्ण कलशोंकी उपमाको धारण करते हैं। कटि केहरीके समान कृश, जंघा केलेके स्थंभ समान, कोमल चाल हंसनीकीसी, स्पर्श रुईसे भी कोमल, महा सुगंधित शरीर और कांतिमान तेजस्वी तुम्हारी छवि है। और कहां मैं अत्यन्त कुरूप, कुष्ट व्याधिसे पीड़ित, महा दुर्गन्धित शरीरका धारी हूं।

इसलिये हे प्राणवल्लभे! जबतक मेरे इस अशुभ कर्मका उदय है तबतक तुम दूर रहो। यह राध रुधिर पोंछते हुए तुमको मैं नहीं देखसकता हूं। मुझे तुमको इसप्रकार सेवा करते देखकर बहुत अधिक लज्जा और खेद उत्पन्न होता है, कि तुम जैसी सब गुण-सम्पन्न स्त्रीको मेरे जैसा रोगी भर्तार मिला। इसलिये मेरे जबतक असाता कर्मका उदय है, तबतक तुम अलग रहकर ही सुखसे काल व्यतीत करो। यद्यपि श्रीपालजीके द्वारा ये वचन मैनासुंदरीके लिये हित और करुणा बुद्धिसे ही कहे गये थे; परन्तु उस समय वे उसे तीक्ष्ण तीरके समान प्रतीत हुये क्योंकि—

'पति निंदा अरु आप बड़ाई, सह न सकैं कुलवती लुगाई।'

वह मंदस्वरसे बोली—नाथ! मुझे आपके ये शब्द सुहावने नहीं लगे। क्या दासीसे कोई अपराध बन गया है या सेवामें त्रुटि पाई गई है जो ऐसे तिरस्कारयुक्त वचन कहे गये हैं। प्राणनाथ! क्या स्वप्नमें भी मैं आपको छोड़ सकती हूं? क्या छाया शरीरसे, चांदनी चंद्रमासे, धूप सूर्यसे, उष्णता अग्निसे और शीतलता हिमसे कभी पृथक् होसकती है? नहीं कदापि नहीं। चाहे अचल सुमेरु चले जावे, चाहे सूर्य पश्चिमसे उदय होकर पूर्वमें अस्त होवे, और

चाहे जलमें अग्निवत् उष्णता होजावे, तौभी **शीलवान स्त्रियां पति सेवासे विमुख नहीं होसकतीं।**

स्त्रियोंको संसारमें एक मात्र सुखका आधार उनका पति ही होता है, और यदि पति ही तिरस्कार करे तो फिर संसारमें कौन उन्हें अवलंबन देनेवाला है? जैसे डालीसे चूका बंदर और वृक्षसे टूटा फल, इनको कोई सहायक नहीं होता वैसे ही **पतिसे विमुख स्त्रियोंको भी कोई सहायक नहीं होता है।** पुराणोंमें सीता, द्रौपदी, सुलोचना आदि सतियोंकी कथाएं प्रसिद्ध हैं कि जिन्होंने और सब सुखोंपर धूल डालकर पतिके साथ जंगल-पहाड़ोंमें शेर, बाघ, श्यालप्रभृति हिंसक पशुओंका सामना करते हुये, कंकर पत्थरोंकी ठोकर खाकर, कांटोंपर चलना स्वीकार किया था, परन्तु पतिका साथ छोड़ना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। इसलिए हे प्रियतम! मैं एक क्षणभर भी आपको ऐसी अस्वस्थ अवस्थामें छोड़कर अलग नहीं रह सकती। मैं आपको अपना भर्तार बनाकर अपने आपको बड़ी भाग्यवती समझती हूं। संसारमें वे ही स्त्रियां धन्य हैं कि जिन्होंने कुछ भी पति-सेवा की है।

प्राणपति! मेरी दृष्टिमें तो आपसे अधिक रूपवान्, गुणवान, धैर्यवान, बलवान मनुष्य कोई भी संसारमें नहीं दीखता। मेरे नेत्र तो आपको देखकर ही प्रफुल्लित होते हैं। मेरा हृदय तभीतक पवित्र है जबतक मैं आपका नाम जपती हूँ। हाथ तभीतक पवित्र हैं, जबतक आपके पद प्रक्षालन करती हूं। मैं तभीतक धन्य हूँ जबतक आपकी सेवा करती हूँ। जो स्त्रियाँ शील रहित हैं, पतिकी

निंदा करनेंवाली हैं, उनको धिक्कार है। शीलव्रत ही जगतमें प्रधान रत्न है।

शीलवान् नर नारियोंके देव भी किंकर होते हैं। और गृहस्थ स्त्रियोंका शीलव्रत स्वपतिकी अनुचरी होकर रहना ही है। इसलिये ऐसे पवित्र शीलधर्मको मैं कदापि नहीं छोड़ सकती। शील ही मेरा रूप है, शील ही आभूषण और शील ही शृंगार है और शील हीसे जीना है। इसलिये चाहे सर्वस्व चला जाय, परन्तु यदि शील बच गया, तो कुछ भी गया नहीं समझना चाहिये। इसलिये हे प्राणाधार! मेरी यही प्राथना है कि दासीको सेवासे विमुख न कीजिये। इस समय आपकी सेवासे बढ़कर आनन्द मुझे संसारमें और कुछ होही नहीं सक्ता।

श्रीपाल अपनी प्रियतमाके ऐसे वचन सुनकर रोम रोम हर्षित होकर गद्‌ गद्‌ वाणीसे प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे कि हे गुणनिधे! तू धन्य है जो तेरे हृदयमें शीलकी प्रतिष्ठा है। और मेरा भी भाग्य धन्य है जो तुझसी रूप शील व गुणकी खानि पत्नी मुझे मिली। इसप्रकार परस्पर वार्तालाप होता रहता था। निःसंदेह कर्मकी गति अरोक व अमिट है। इसीका विचारकर वे दम्पति परस्पर वार्तालापमें समय व्यतीत करने लगे।

सत्य है, कर्मने किसीको भी नहीं छोड़ा। और तो क्या; वह श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामीपर भी आक्रमण किये विना न रहा। यह बात अलग है कि सबलसे वैर करनेसे हार खाकर मरना पड़ा। और देखो—सीता, द्रौपदी, अंजनी, रावण, राम, बाहुबलि, भरत

४

आदि जो बड़े २ बली और पराक्रमी नररत्न थे उनको भी जब कर्मने नहीं छोड़ा, तब फिर हमारी तो बात ही क्या है? हां! एक उन्हींपर उसका जोर नहीं चलता जिन्होंने इसको संपूर्ण प्रकारसे निर्मूल कर दिया है। अहा! हम भी उन्हींका (कर्म रहित सिद्ध परमेष्ठीका) शरण लेवें तो निश्चय है कि शीघ्र ही कभी हमारे भी कर्मोंका अन्त आवेगा। ऐसा विचार होते ही वे दोनों प्रफुल्लित चित्त होकर श्रीजीके गुणानुवाद गानेमें निमग्न होगये। ठीक है;—

कर्म असाता अंत ह्वै, उदै जु साता आय।
तब सुध बुध सब ऊपजे, आप हि बने उपाय॥

पश्चात् वे दोनों (दम्पति) उठे और बड़े उत्साहसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिने, और प्रासुक अष्ट द्रव्य लेकर श्री जिन चैत्यालयको वंदनार्थ गये। सो वहां पहुंचकर प्रथम ही '**ॐ जय २ निःसहि निःसहि निःसहि**' कहकर मंदिरके अंदर प्रवेश किया। और फिर तीन प्रदक्षिणा देकर श्रीजिनेन्द्रकी शांत मुद्राको देखकर परम शांतभावको प्राप्त हो स्तुति करने लगे—

'शांति छवी मन भाई स्वामी तेरी शांति छवी मन भाई। टेक
दर्शत मिथ्या तिमिर नाश हो, स्वपर स्वरूप लखाई।
परशत परम शांतिता उपजत, अरचत मोह नशाई॥स्वामी०॥
दोष अठारह रहित जिनेश्वर, सब जीवन सुखदाई।
आप तिरे पर तारण कारण, मोक्ष राह बतलाई॥स्वामी०॥
तुम गुणमाल चितारत हो चित, कठिन कर्म कट जाई।
"दीप" जगतजन भव तट पायो शरण तुम्हारे आई॥स्वामी०

इसप्रकार स्तुति करनेके पश्चात् वहाँपर विराजमान श्रीनिर्ग्रन्थ गुरुके चरणकमलोंमें नमस्कारकर दम्पति अपने असाता वेदनीयके नाश होनेके निमित्त विनयपूर्वक इस प्रकार पूछने लगे—

हे स्वामी ! आपके निकट शत्रु और मित्र सब समान हैं। मिथ्यात्वरूपी अंधकारसे अंध हुए जीवोंको ज्ञानांजन द्वारा सनेत्र करनेको आप ही समर्थ हैं। हम लोग तो कर्मके प्रेरे हुए चतुर्गति-रूप संसारमें भटक रहे हैं; और उन्हीं कर्मोंके शुभाशुभ फलमें मोहके उदयसे इष्टानिष्ट कल्पना कर रहे हैं। इसीलिये ही हमको सत्यार्थ मार्ग नहीं सूझता। हम लोग हीन शक्तिके धारक इस जड़ शरीरमें ही सुख व दुःखोंका अनुभव कर रहे हैं। और इतने कायर हो रहे हैं कि थोड़ी भी वेदना नहीं सह सकते। इसलिये इस रोगके प्रतीकारका कोई उपाय हो तो कृपाकर बताइये। तब मुनि-राज बोले–कि वत्स ! सुनो।

॥ वसन्ततिलका छन्द ॥

धर्मे मतिर्भवति किं बहुभाषितेन।
जीवे दया भवति किं बहुभिः प्रदानैः॥
शांतिर्मनो भवति किं धनदे चतुष्टे।
आरोग्यमस्ति विभवेन तदा किमस्ति॥

अर्थात्–जिसकी बुद्धि धर्ममें है, तो बहुत कहनेसे क्या है ? जिसके अंतरंगमें जीवोंकी दया वर्तमान है, उसे और दानोंसे क्या है ? यदि संतोष चितमें है, तो कुबेरकी लक्ष्मीसे क्या है ? और शरीर निरोग है तो और विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? और भी–

॥ इन्द्रवज्रा ॥

बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च, देहस्य सारं व्रतधारणं च।
अर्थस्य सारं किल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम्॥

अर्थात्- बुद्धिका फल तो तत्त्वोंका विचार करना, देहका व्रत धारण करना, धनका फल पात्रदान करना और वाणीका हितमित वचन बोलना है। इसलिये ए भव्यो! भगवानने जो प्रकारका धर्म कहा है एक अनगार-साधुका और दूसरा साग गृहस्थका, सो भवसमुद्रके तटपर आये हुए भव्य जीवोंको स दुःखोंसे छुड़ानेवाला है। इसलिये जो शीघ्र ही तिरनेकी इच्छ चारित्रमोहके क्षयोपशम होनेपर अनगार व्रत धारण करते है कर्म-शत्रुको जीतकर तद्भव भी मोक्षके अविनाशी सुखको प्राप्त क हैं, परन्तु शक्तिहीन पुरुष जो मोहके उदयसे सकल संयम ध नहीं कर सकते वे देशसंयम-गृहस्थ धर्मको ही धारण कर लेते सो यहां पर उसी गृहस्थ धर्मका स्वरूप कहते हैं-

प्रथम ही जीवोंको सत्यार्थ (क्षुधादि १८ दोपरहित वीत सर्वज्ञ जिन) देव, बाह्य अभ्यंतर परिग्रहसे रहित दिगंबर गुरु अहिंसामई धर्मका श्रद्धान करना चाहिये। पश्चात् जीवादिक तत्त्व स्वरूप समझकर उसका यथार्थ श्रद्धान करना चाहिये। इसे व्यव सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्दर्शनका कारण कहते हैं। इसके सि जो जीव अजीव आश्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्षादि तत्त्व हैं, उनका यथार्थ श्रद्धान तथा ज्ञान कर अजीव पुद्गलादि परद्रव भिन्न अपने शुद्ध चैतन्य आत्मस्वरूपका श्रद्धान होना उसे नि

सम्यग्दर्शन कहते हैं। सो इस सम्यग्दर्शनको शंकादिक आठ दोष + जाति रूपादि आठ मद, + कुगुरु कुदेव कुधर्म और इनके तीन सेवक ऐ ६ अनायतन + और लोक मूढ़ता देव मूढ़ता व पाखंड मूढ़ता इन २५ दोषोंसे रहित और निःशंकितादि आठ अंग सहित धारण करना चाहिये। इसप्रकार व्रत रहित श्रद्धानी पुरुषको अव्रत सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

यही सम्यग्दृष्टि जब पांच उदम्बर (वड़, ऊमर, पीपर, पाकर, कठूंवर) और तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) का त्याग करके जुवा, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री सेवन आदि व्यसनोंका तथा अभक्ष भक्षण और अन्यायरूप प्रवृत्तिका त्याग करता है तब उसे प्रथम प्रतिमाधारी श्रावक कहते हैं।

और जब संकल्प करके त्रसजीवोंकी और निष्प्रयोजन स्थावर जीवोंकी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अतिशय लोभका एकदेश त्याग करके उनके अतीचारोंको भी त्याग करता है, तथा इन्हीं पांच व्रतोंकी रक्षार्थ सप्त शीलों (तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों) को भी पालन करता है तब इसे दूसरी व्रत प्रतिमाधारी श्रावक कहते हैं। इसके सिवाय सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग, रात्रि-भुक्ति त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग ये उत्तरोत्तर विषय और कषायोंको क्रमसे घटानेवाली ९ प्रतिमा श्रावककी और भी हैं, जो यथाशक्ति धारण करनी चाहिये। *

---

*विशेष स्वरूप रत्नकरण्डश्रावकाचारादि आचार ग्रंथोंसे जानना चाहिये।

यही श्रावकके मुख्य व्रत हैं। इसलिये जो सम्यग्दर्शनपूर्वक इन व्रतोंको निर्दोषरीत्या धारण करता है, उसका न्य व्रत अकरना भी सार्थक है, अन्यथा वृथा कायक्लेश मात्र है। अतएव ऐ भव्यो! तुम प्रथम इन व्रतोंको धारण करो, और फिर विधि सहित **सिद्धचक्र (नंदीश्वर=अष्टाह्निका) व्रतको** पालो, क्योंकि इस व्रतके प्रभावसे सर्व रोग शोक दूर होजाते हैं।

तब मैनासुन्दरीने विनयपूर्वक कहा—हे स्वामिन्! कृपाकर इस व्रतकी विधि भी बताइये। तब स्वामीने कहा कि एक वर्षमें तीन वार कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ इन तीनों महीनोंमें शुक्लपक्षके अंतमें आठ दिन अथवा अष्टमीसे पूनम तक यह व्रत करना चाहिये सो उत्तम तो यह है कि आठ ही दिन उपवास करे। और मध्यमके वेला तेलादि अनेक भेदरूप हैं। इसलिये अपनी शक्ति अनुसार जितना होसके वैसा अवश्य ही करना चाहिये। और इन उपवासके दिनोंमें गृहारम्भ तथा विषय कषायोंसे अपने चित्तको रोककर निज शुद्ध आत्माका विचार करना चाहिये और जो ऐसा करनेमें असमर्थ हों (क्योंकि वीर्यांतराय तथा दर्शन और ज्ञानवर्णीय कर्मके क्षयोपशमसे प्राप्त हुआ जो आत्मामें बल और भलेप्रकारसे तत्व निर्णय करनेरूप सम्यग्ज्ञान उसीसे शुद्धात्माके अनुभवनमें स्थिरीभूत होसकता है, अन्यथा ऐसा होना सहज नहीं है) तो वे अपना समय धर्मध्यान, पूजन, भजन, स्वाध्याय, तत्वनिर्णय, धर्मोपदेश, सामायिक आदिमें वितावें। क्योंकि कहा है—

कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते।
उपवासो स विज्ञेयो शेषं लंघनकं विदुः॥

अर्थात्-कषाय, विषय और आहारका त्याग जब होता है तभी उसे उपवास कहते हैं, शेष तो लंघन ही कहा गया है।

इस प्रकार जब आठ वर्ष पूरे हो जावें, तब विधिसहित उद्यापन करे, अर्थात् सप्तक्षेत्रोंमें जैसे–जिन मंदिर, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, जिन शास्त्र लिखाना, पूजन विधान करना, तीर्थयात्रा करना, धर्मोपकरण बनवाना, धर्मोपदेश दिलाना, वस्तिकादि बनवाना इत्यादि कार्योंमें शक्ति प्रमाण द्रव्य खर्चें। चार प्रकारके संघमें मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओंको चार प्रकारके दान औषधि आहार शास्त्र और अभय दान देवे। दुःखित भुक्षितको करुणा कर दान दे संतोषित करे, जहाँ जिनमंदिर न होवे वहाँ साधर्मी भाइयोंके धर्मसाधनके निमित्त जिन मंदिर बनवावे, शास्त्र लिखावे, विद्यालय बनवावे, वस्तिका (संयमियोंके रहने योग्य मुकाम) बनवावे। इस प्रकार उत्साहपूर्वक अतिचाररहित व्रत करनेसे और तो क्या क्रमशः कर्मका नाश होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार मैनासुंदरी और श्रीपाल राजाने मुनिके द्वारा व्रतकी विधि सुन सहर्ष स्वीकार किया, और विनयसहित नमस्कार करके अपने स्थानको पधारे। और परस्पर प्रेमालाप करते हुए समय व्यतीत करने लगे। जब कभी राजाको उद्वेग हो जाता तो मैनासुदरी, और मैनाको खेद होजाता, तो राजा श्रीपाल नम्र और मधुर शब्दोंमें प्रेमपूर्वक धैर्य देते, कभी तत्त्व चर्चा करते और कभी जिनेन्द्रके गुणोंमें आसक्त होकर स्तुति करते। इसतरह सुखपूर्वक दम्पतिका समय व्यतीत होता था। सो ठीक ही है क्योंकिः—

"नरनारी दोनों जहां विद्या बुद्धि निधान।
तिनके सुखको जगतमें, को कर सके बखान? "

बस, इसी तरह कुछ दिन व्यतीत होनेपर कार्तिकका पवित्र महीना आया सो शुक्ल अष्टमीको मैनासुंदरी बड़े हर्ष सहित प्रासुक जलसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिर श्री जिनमंदिरमें गई, और विधि-पूर्वक अभिषेक करके अष्टद्रव्यसे प्रभुकी पूजा की तथा आठ दिनके लिये नंदीश्वर व्रत धारण किया। इस प्रकारसे वह नित्य-प्रति आठों दिन भगवानकी पूजा करके गंधोदक लाती। और सातसौ सखों सहित अपने पति श्रीपालके कुष्टसे गलित शरीरपर छिड़कती थी। इस प्रकार श्रीपालके असाता कर्मके अंत और साता (पुण्य) के उदय होनेका कारण उस सतीकी सच्ची पतिसेवा, प्रभुभक्ति तथा व्रतका प्रभाव ही था कि आठ ही दिनमें श्रीपाल और उनके सातसौ सखोंसे शरीरके कोढ़ इसतरह निर्मूल होगया, मानों कि उन्हें कभी रोग हुआ ही नहीं था। और श्रीपालका शरीर तो कामदेवके समान सुन्दर होगया। अहहा! देखो, सतीके सतीत्व तथा पतिसेवा और व्रतका प्रभाव कि अल्प समयमें ही सातसौ सखों सहित राजा श्रीपालका कोढ़ बिलकुल चला गया। ठीक है—

ज्यों दीपककी ज्योतिसे, अंधकार नश जाय।
त्यों जिनधर्म प्रभावसे कठिन कर्म कट जाय॥
जिन सुमरे व्यंतर भगे, भूत पिशाच पलाहिं।
तो अचरज यामें कहा, रोग शोग नश जाहिं॥

इस ही भव यश सुख लहे, परभवकी क्या बात।
वहुत कहा कहिये भविक ! अनुक्रम कर्म नशात॥
ताते सम्यक्दर्श युत, धारो सम्यकज्ञान।
पुनि सम्यक्चारित्र धर, करो स्वपर कल्याण॥

इस प्रकार उनके असाता कर्म क्षय हुए और वे दम्पति परम आनन्दसे सखों सहित अपना जीवन व्यतीत करने लगे। यथार्थमें स्त्रियोंका यही धर्म है कि तन मन धनसे पतिसेवामें तत्पर रहें। क्योंकि कहा है—

पति सुख लख होवे सुखी, पति दुख दुःखित होय।
धन्य जनम उन त्रियनको, सती पतिव्रता जोय॥
देखो मैनासुंदरी, पायो फल अभिराम।
सुख सम्पति पाई सबहिं, पती हुवो ज्यों काम॥

श्रीपालकी माताका श्रीपालसे मिलना।

इस प्रकार असाता कर्मके अंत होनेसे मैनासुन्दरी श्रीपाल सहित देवोंके समान दिव्य सुख भोगने लगी। ठीक है–रात्रिके पीछे दिन होता ही है। और सत्य हृदयसे की गई सेवा तथा परिश्रमका भी फल अवश्य मिलता है। इनको ऐसा आनन्द हुआ कि निश वासर जाते मालूम नहीं होते थे। ठीक है–जिस कार्यके लिये परिश्रम किया जाय, और जब वह कार्य सिद्ध होजाय, तो फिर किसको हर्ष नहीं होता? कहा है–

साता उदय न लखपरे, केतक वीतो काल।
उदय असाता एक क्षण, वीते जैसे साल॥

परन्तु धन्य है वह सती मैनासुन्दरी जो केवल विषयोंहीमें मग्न नहीं होगई थी किन्तु वह धर्मको ही उभय लोकोंके सुखोंका मुख्य साधन और परम्परा मोक्षका कारण जानती हुई बराबर सेवन करती थी। क्योंकि उसे यह निश्चय था कि यह सब विभूति जो मुझे प्राप्त हुई है सो केवल धर्मका ही फल है। इसलिए मुझे धर्मको छोड़कर केवल उसके फल अर्थात् अर्थ और काममें ही आसक्त नहीं होजाना चाहिए; क्योंकि "मूलो नास्ति कुतो शाखा" मूलके नाश होनेपर डाली कहां होसक्ती है? यथार्थमें वे बड़े मूर्ख हैं जो मूलको नाशकर फलोंकी आशा करते हैं। कहा है—

ज्यों जल डूबत कोय, वाहन तज पाहन गहे।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छोड सेवत विषय॥

ऐसा समझकर जो नर बुद्धिमान हैं सो धर्मको नहीं विचार

कर उससे अविरुद्ध अर्थ और कामको (कर्मफल समझकर) भोगते हैं। कहा है—

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग मांहि।
त्यों बुधजन सुख भोगवे, धर्म विसारे नांहि॥

यह बात तो यहांतक हुई। अब श्रीपालजीकी माता **कुंदप्रभाका** हाल कहते हैं। राजमाता कुन्दप्रभा पुत्रके वियोग तथा उसकी अस्वस्थ अवस्थाका विचार करती हुई अत्यन्त दुखित रहा करती थी। और कभी तो दो दो दिन तक भोजन भी नहीं करती थी। चिन्तासे उसका शरीर क्षीण होरहा था। क्योंकि **माताका प्रेम पुत्रपर अनन्य ही होता है।** वह बालकको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती है। उसके दुःखको अपना ही दुःख समझती और उसे सुखी देखकर अपना भी दुःख भूल जाती है। चाहे पुत्र भला बुरा कैसा भी क्यों न हो, वह चाहे माताको कितना भी कष्ट क्यों न देता हो। परन्तु तो भी माता उसे सदैव प्रेमदृष्टिसे ही देखती है। धिक्कार है उन पुरुषोंको जो अपनी माताओंको किसी भी प्रकारका कष्ट पहुंचाते हैं, यथार्थमें उनके समान कृतघ्नी संसारमें और कोई भी नहीं होसक्ता। इसप्रकार माता कुंदप्रभाको अपने पुत्रकी चिंता हुए बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु क्या करे निरुपाय थी।

यद्यपि उसे पुत्रका मोह अवश्य बहुत था, यहाँतक कि इससे शरीर भी अत्यन्त क्षीण होगया था; परन्तु वह प्रजावत्सल रानी इस दशामें भी श्रीपालको बुलाकर पास रखना नहीं चाहती थी; क्योंकि जिस कार्यसे केवल अपना मन प्रफुल्लित हो; परन्तु सर्व-

साधारण अर्थात् प्यारी प्रजाको दुःख पहुंचे, वह काम उत्तम पुरुष कभी नहीं करते हैं।

सत्य है, दुसरोंके पुत्रोंको मारकर या अन्य प्रकारसे उन्हें पुत्र आदि इष्टजनोंके वियोगजनित दुःख पहुंचाकर संसारमें कोई भी पुत्र लाभ नहीं कर सकता है। निदान एक दिन माता स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिन श्री **जिनमंदिर** गई और प्रथम ही श्रीजिन भगवानकी वंदना स्तुति कर पश्चात् वहां बैठे हुए श्री **मुनिराजको** नमस्कार कर विनयपूर्वक अपने पुत्रकी कुशल पूछने लगी। तब उन परमदयालु, शत्रु व मित्रको समान जाननेवाले परम दिगम्बर जैन गुरुरायने **अवधिज्ञानसे श्रीपालके उज्जैन** (मालवा) जाने, वहांके राजा पहुपालकी पुत्री **मैनासुन्दरीके** साथ सम्बन्ध होने, और कुष्ट व्याधिके दूर होजाने आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त रानी कुन्दप्रभाको कह दिया। सो अपने पुत्रको स्वास्थ्य लाभ और स्त्री लाभकी वार्ता सुनकर रानी प्रसन्नचित्त होकर घर आई। और अपने देवर वीरदमन (वर्तमान राजा जो कि इस समय श्रीपालकी जगह राज्य करते थे) के पास जाकर अपने पुत्रसे मिलनेकी आज्ञा मांगी और अति उमंग सहित शीघ्रतासे उज्जैनको प्रयाण किया।

इस समय कुंदप्रभा रानीका चित्त पुत्रसे मिलनेके लिए बहुत ही आतुर होरहा था, इसलिए दिन रातका कुछ भी विचार न कर बराबर प्रयाण करती हुई माता कुछ ही दिनोंमें उज्जैनके उद्यानमें पहुँच गई। ठीक है, एक तो सहज ही इष्टके मिलनेकी चाह हुआ करती है; फिर तो यह निज पुत्रसे मिलनेका उत्साह

था, सो इसमें तो कहना ही क्या है ? वास्तवमें माताको पुत्रसे प्यारा और कुछ भी नहीं होता । इस प्रकार उसने वहां पहुंचकर नगर बाह्य अति उत्तुंग महल देखा और विस्मय युक्त होकर वहांसे जाते हुए एक वीर (योद्धा या सिपाही) से पूछा कि यह किस महा भाग्यवानका महल है ? तब उस वीरने कहा—

माताजी ! यहांपर न मालूम कहांसे एक कोढ़ी पुरुष जिसका नाम श्रीपाल था बहुतसे कोढ़ियों सहित आया था, जो बहुत दिनों तक इसी उद्यानमें रहा । किसी एक दिन यहांका राजा पहुपाल वनक्रीड़ाके निमित्त कहींसे भ्रमण करता हुआ यहां आ निकला, और वह उस कोढ़ीको देख मोहित होकर उससे गले लगाकर मिला और चलते समय अपनी परम गुणवती रूपवती सुशील कन्या मैनासुन्दरी भी इसे देनेका वचन दे गया । यद्यपि मंत्री पुरोहित आदि सभीजनोंने राजाको इसके विरुद्ध समझाया, परन्तु होनी अमिट है । राजाने किसीकी भी बात न मानी और बड़े हर्ष सहित उस कोढ़ीको बुलाकर अपनी पुत्रीके साथ लग्न कर दिया । इस कृत्यसे सब प्रजा राजासे अप्रसन्न होगई थी; परन्तु करती ही क्या ? कुछ वश ही क्या था ।

भला जब स्वामी ही प्रसन्न हैं तो नौकर वा आश्रितजन कर ही क्या सक्ते हैं ? यद्यपि स्वजन पुरजन सब ही इस अनुचित सम्बन्धसे दुःखी थे तथापि धन्य है उस राजपुत्रीको कि जिसके मुखसे ऐसा अनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी आनन्द बरसता था । निदान, व्याह होनेके पश्चात् उस सती शीलवतीने अपने पतिकी

निःसीम सेवा की और अर्हत देव निर्ग्रंथ गुरु तथा दयामई धर्ममें अपूर्व भक्ति की, तथा सिद्ध चक्रव्रतको सम्यग्दर्शन तथा ज्ञानसहित धारणकर विधियुक्त पालन किया ।

इसीसे हे माता ! अब उसके शील व जिनधर्मके प्रभावसे वही कोढ़ी भी कामदेवके समान अत्यंत रूपवान् हो गया है, और उसके सब साथियोंका भी रोग इस तरहसे चला गया है, मानो कभी हुआ ही नहीं था । और अब तो उसके सुख व वैभवका वर्णन मैं कर ही क्या सकता हूं ? सो हे माता ! यह उत्तंग सुंदर महल उसी महा भाग्यशाली पुरुषका है ।

यह सुनकर रानी प्रसन्न हो उस महलके द्वारपर गई, और नियमानुसार द्वारपालसे राजाको खबर देनेके लिये कहा । द्वारपालने शीघ्र ही श्रीपालसे यह संदेश कह दिया । श्रीपाल माताका आगमन सुनकर अपनी प्रिया मैनासुंदरीसे कहने लगे कि प्रिये ! हमारी माताजी आई हैं, सो उनका आदरसत्कार भले प्रकार करना चाहिए । किसी प्रकारसे भी उनको खेदका कारण न होने पावे । यह कहना श्रीपालजीका तो ठीक ही था; परन्तु मैनासुंदरीके लिये तो इसकी कुछ भी आवश्यक्ता नहीं थी; क्योंकि उसमें उत्तम स्त्रियोंके संपूर्ण उत्तम गुण स्वभावसे ही विद्यमान थे ।

वह जानती थी कि किस पुरुषसे कैसे व्यवहार करना चाहिये इसलिये वह पतिकी आज्ञा शिरोधार्यकर हर्ष सहित मंगल कलश लेकर अपने स्वामी सहित सासुकी अगवानीके लिये गई । और बड़ी विनय व भक्ति सहित उनको नमस्कार कर स्वागत किया और लज्जा

युक्त उनके पीछे खड़ी होगई। श्रीपालने भी माताके पादारविन्दोंको स्पर्शकर मस्तक झुकाया। तब माताने उन दोनोंको पुत्र पुत्रीवत् प्रेमसे गले लगा लिया, और शुभाशीर्वाद दिया। उस समय अत्यंत मोह व बहुत दिनमें विपत्तिके बाद मिलनेके कारण उनके रोमांच होआये और नेत्रोंसे हर्षाश्रु टपकने लगे फिर वे परस्पर कुशलक्षेम पूछने लगे। तब श्रीपालने अपने यहां आने और मैनासुन्दरीके साथ विवाह सम्बंध होने, उसके निर्दोष अष्टाह्निका व्रत पालने और सच्ची सेवा करनेके कारण कुष्ट व्याधिके क्षय होनेका संपूर्ण वृत्तांत आद्योपांत मातासे कह सुनाया। तब माता कुंदप्रभाने वहू मैनासुंदरीको यह आशीर्वाद दिया–

"हे पुत्री! तू आठ हजार रानियोंमें पट्टरानी हो, और यह श्रीपाल कोटीभट्ट चिरंजीव रहे। तथा पहुपाल राजा जिसने यह उपकार कर निज पुत्रीरत्न मेरे पुत्रको दिया, सो बहुत कीर्ति व वैभवको प्राप्त हो।"

माताका यह शुभाशीर्वाद सुन वहू और बेटाने अपना २ मस्तक झुकाया और विनीत भावसे कहने लगे–हे माता, यह सब आपका ही आशीर्वाद है कि हमने आज आपके दर्शनसे सम्पूर्ण आनंद प्राप्त किया। धन्य है आजकी घड़ी व दिन कि जिससे हमें आपके ये शुभ वचन सुननेको मिले! आपके पग प्रक्षालनेसे हमारे हाथ, दर्शनसे नेत्र, वार्तालापसे कर्ण और शुभाशीर्वादसे मन पवित्र हुआ। तात्पर्य-हम लोग आज आपके दर्शनसे कृतकृत्य हुए हैं, इत्यादि परस्पर वार्तालाप करके सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक दिन वे श्रीपाल और मैनासुंदरी स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिर श्रृंगारपूर्वक अति उत्साहसे जिनमंदिरको गये । वहां पर श्री जिनदेवकी अष्ट प्रकारसे पूजनकर अपना अहोभाग्य मानते हुए धर्मश्रवणकी इच्छासे यहां वहां देखने लगे । तो वहांपर साक्षात मोक्षमार्गमें स्थित श्री परम दिगम्बर महा मुनिराजको देखकर अति प्रसन्न हुए और नमस्कार करके स्तुति करने लगे -

जय जय मुनिवर गुणहिं निधान, जय करुणासागर परधान ।
जय जय अभयदान दातार । जय जय भवदधि तारनहार ॥
जय जय चरण आचरण धीर । जय जय मोह दलन वरवीर ॥
जय जय क्षमावंत सुख धाम । जय जय शिव सीता पतिराम ॥
जय जय सहन परीषह देह । जय जय दश लक्षण गुण गेह ॥
जय जय रत्नत्रय व्रत धरन । जय जय वारह विधि तप करन ॥
जय जय श्रीगुरु दीन दयाल । अब तो शरण लही श्रीपाल ॥

इस प्रकार स्तुतिकर वे दोनों वहाँ विनय सहित यथायोग्य स्थानमें बैठ गये । यथार्थमें जो कोई भी शुभ इच्छा की जाती है वह अवश्य ही सफल होती है । कहा है—

उपजे शुभ इच्छा मन जोई, सो निश्चय कर पूरण होई ।
पर न अशुभ चिंते सिद्ध होई, तासो अशुभ न चिंतो कोई ॥

इस बातको यहां छोड़कर, राजा पहुपालका वृत्तान्त कहते हैं । एक दिन राजा पहुपालको अपनी पुत्रीके दुःखकी बात याद आ गई सो वह अपने हठपूर्वक किये हुवे दुष्कृत्यपर पश्चात्ताप करने लगा, और इसलिये उसका शरीर मारे चिंताके दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा । ठीक है—

चिंता चिता समान, बिन्दुमात्र अंतर लखो।
चिता दहति निष्प्राण, चिंता दहति सजीवको॥

यह दशा देखकर उसकी रानी निपुणसुंदरी बोली हे नाथ! आपका शरीर दिनोंदिन क्षीण क्यों होता जाता है? चित्त उदास रहता है। आपका मुखकमल पीला और कांतिहीन होता जाता है, इसका कारण क्या है? कृपाकर कहिये। यद्यपि राजाने अपने मनकी बात इस विचारसे कि अभी तो मैं ही दुःखी हूँ और जो रानीसे कहूंगा, तो वह भी दुःखित हो जायगी, छुपाना चाहा, परंतु वह अपनी प्राणवल्लभासे और अधिक समय तक छुपा नहीं सका। ठीक है—पुरुष यदि अपने भावको किसी प्रकार छिपाना भी चाहे परन्तु संसारमें जो चतुर स्त्रियां हैं वे तुरन्त ही उनकी चेष्टासे, वचनोंसे व रहन सहनसे अपने पतिके मनका भाव जानकर, अपने हाव, भाव, विभ्रम, कटाक्ष और रसीले ललित शब्दों वा कार्यकुशलतासे प्रगटरूपसे कहला ही लेती हैं। यथार्थमें वे स्त्रियां स्त्रियां ही नहीं कही जासकती हैं कि जिनको अपने पतिके सुख दुःख व उनके मनका भाव जाननेकी शक्ति नहीं है, या जो जाननेकी चेष्टा करती ही नहीं हैं। स्त्री पुरुषकी अर्द्धांगिनी कही जाती है, इसलिये यदि एक अंगको पीड़ा होवे तो दूसरेको अवश्य ही खबर पड़ना चाहिये। निदान, राजाने अपनी चिंताका हाल रानीसे कह दिया। तब रानीने भी दुःखित हो विनीत वचनोंसे कहा—

हे स्वामी! संसारमें होनहार अमिट है। कर्म जीवके साथ ही लगे हैं, और सब जीव संसारमें स्व स्वकृत कर्मोंका फल भोगते हैं।

पुत्रीका उदय ऐसा ही था सो उसमें आप व मैं, व स्वजन परजन आदि क्या ही क्या सकते थे? हम सब तो निमित्तमात्र हैं इसलिये अब इस चिंतासे कुछ लाभ नहीं है। चिंतासे तो केवल शरीरका शोषण और कर्मबन्ध ही होगा इसलिए चिंताको त्याग करना ही उचित है।

इस प्रकार रानीने अपने पतिको धैर्य बंधाया। यद्यपि रानी-को भी अपनी पुत्रीका दुःख कुछ कम न था; क्योंकि पितासे अधिक प्यार पुत्र और पुत्रियोंपर माताका ही होता है परन्तु उस समय यदि रानी भी शोक करने लग जाती तो किसी प्रकार राजाके प्राण नहीं बच सकते थे। इसलिये ही रानीने अपने भावको प्रगट न कर राजाको धैर्य बंधाया। (ठीक है पति-पत्नीका यही धर्म है, कि जब पत्नीको चिंता व दुःख आवे तो पति निवारे, और जब पतिको कोई चिंता व दुःख आवे तो पत्नी निवारण करे।)

धन्य हैं वे स्त्रियां जो विपत्तिके समयमें अपने पतिको मंत्रीकी तरहसे सलाह और माताकी तरहसे धैर्य देवें, तथा मित्रकी तरहसे प्रत्येक कार्यमें सहायता दें, और स्वप्नमें भी छायाके समान कभी अलग न होवें। वह बोली-हे स्वामी! दिनके बाद रात्रि और रात्रिके बाद दिन अवश्य होता है। इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मोंका भी चक्र है। जो उदय आता है उसकी निर्जरा भी नियमसे होती है।

फिर यह भी किसे मालूम है कि किसके कर्ममें क्या लिखा है? इसलिए अब इस चिंताको छोड़िये और श्रीगुरुके पास चल-कर इस संशयका निराकरण कीजिए। इस प्रकार राजाको धैर्य

देकर रानीने स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिरे, और श्री जिनमंदिरको गईं। प्रथम ही श्री जिनराजको मन वचन काय सहित साष्टांग नमस्कार कर स्तुति वंदना की पश्चात् वहां बैठे हुए श्री दिगम्बर गुरुको नमस्कारकर यथायोग्य स्थानमें बैठी और ज्यों ही कुछ पूछनेके लिए मुंह खोला था कि उसकी दृष्टि वहींपर बैठे हुए श्रीपाल और निज पुत्री मैनासुंदरीपर पड़ी। सो देखते ही उसके मनका भाव बदल गया। तुरन्त ही उसका चेहरा लाल होगया, और आंखोंमें क्रोध झलकने लगा, दीर्घ उस्वास लेने लगी कि यदि यह पुत्री होते ही मर जाती, तो अच्छा होता; जिससे स्फटिक सरीखे निर्मल मेरे कुलमें कलंक तो न लगता।

हाय पुत्री! तूने यह क्या अनर्थ किया, जो स्व-पतिको छोड़ अन्य पुरुषको लिए बैठी है? तुझे कुछ भी लाज नहीं आती है? तू तो बड़ी चतुर थी, परंतु मुझे यह मालूम नहीं था कि ये सब केवल बातें दिखाऊ थीं। यदि ऐसा ही था तो जब तेरे पिताने तुझे वर मांगनेको कहा था, तभी क्यों नहीं सुरसुंदरीके समान उत्तम वर मांग लिया? सो तब तो बड़ी बड़ी चतुराईकी बातें बनाई और अब न जाने वह बुद्धि और चतुराई कहां चली गई? इत्यादि विचारतेर रानीकी आंखोंसे आंसू टपकने लगे। ठीक है—भला संसारमें ऐसे कौन माता पिता हैं; जो अपने पुत्र व पुत्रियोंको दुराचारी देखकर दुःखी न हों? अर्थात सभी होते हैं। उस समय मैनासुन्दरीने अपनी माताको विलखित बदन देखकर उसके भावको समझ लिया और इसलिये तुरन्त अपने पति सहित उसके पास जाकर कहे

प्रेम व विनय सहित प्रणाम किया; परन्तु जब माताने इसपर कुछ ध्यान न दिया, तब उसने निश्चय कर लिया कि अवश्य ही पूज्य माताजीको कुछ मेरे विषयमें संशय होगया है।

इसलिये वह मधुर वचनोंमें नम्रतापूर्वक बोली- माताजी! आप अपना संदेह छोड़ दीजिए। यह आपके जँवाई वही कोढ़ी राजा श्रीपालजीही हैं, जिनके साथ आपने मुझे परणाया था। धर्मके प्रभावसे **अशुभ कर्मका क्षय** होनेसे इनका ऐसा **कामदेवके समान स्वरूप** होगया है। इस प्रकार मैनासुन्दरीने बहुत कुछ कहा; परन्तु रानीको विश्वास न आया।

वह बोली–अरी पुत्री! तू क्यों ऐसी निर्लज्ज हुई मुझे झूठमूठ बहकाती है। चाहे अग्नि शीतल होजाय और सूर्य पूर्वसे पश्चिममें ऊगने लगे, तब भी मैं तेरी बात सत्य नहीं मान सकती। अपनी सासुके ऐसे वचन सुनकर महाराज श्रीपालने नम्रीभूत हो कहा– माताजी! निःसंदेह आपकी पुत्रीके वचन विश्वासनीय हैं। धन्य है आपका कुल कि जिसमें ऐसा गुणनिधान स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ और धन्य है इसके अखंड शील और व्रतका माहात्म्य कि जिसके प्रभावसे सातसौ सखों सहित मेरा कोढ़ समूल नाश होकर मेरा ऐसा सुगंधित सुंदर शरीर होगया है। मैं वही कोढ़ी श्रीपाल हूँ, इसलिये आप अपना संदेह दूर कीजिए।

जँवाईके मुखसे ऐसा बचन सुनकर निपुणसुंदरीको संतोष हुआ और हर्षसे रोमांच हो आये। वह प्रेमकी दृष्टिसे लड़की और दामादको देखकर मन ही मन प्रफुल्लित होने लगी; परन्तु इस

आनन्दको उसने अकेले ही भोगना उचित न समझा और अपने पतिको भी इसका भाग देनेकी इच्छासे शीघ्र ही गुरुको नमस्कार कर राजमहलको प्रयाण किया और सीधी पतिके निकट जाकर सब वृतान्त निवेदन किया।

राजा पहुपाल यह शुभ समाचार सुनकर अति प्रसन्न हुआ। सो ठीक है—जिस बातकी चिंता हो, और यदि उसीके मिटनेकी बात सुनाई दे, या चिंतित कार्य सिद्ध होजाय, तो किसको खुशी नहीं होती? राजा तुरन्त ही स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहिर पुत्री व जंवाईको देखनेकी आतुरतासे शीघ्र ही जिनालयमें पहुंचा और प्रथम ही श्री जिनेन्द्रकी वन्दनाकर गुरुको नमस्कार किया। पश्चात् पुत्रीकी ओर देखा तो पुत्रीने विनय सहित पिताको प्रणाम कर लज्जासे नम्रीभूत हो मस्तक झुका लिया। राजाने पुत्रीको गले लगाया। और परस्पर दोनोंने वियोगानन्तर सम्मिलित होनेपर जैसा हर्षविलाप होता है किया। राजाने इन्हें भी प्रेमपूर्वक कंठसे लगा लिया। परस्पर कुशल पूछनेके बाद राजा पहुपालने अपने अविचारितरम्य कृत्यकी निंदा की और पश्चात्ताप करने लगा। तब उस दम्पतिने राजाको विनयपूर्वक समझाकर-धैर्य बंधाया।

राजाने पुत्रीसे उसकी पूर्व व्यथा और उसके दूर होनेका वृत्तान्त पूछा। तब पुत्रीने आद्योपान्त कह सुनाया। यद्यपि इससे राजाको बहुत कुछ शांति मिली; परन्तु मनकी शल्य निःशेष न हुई। ठीक है—कष्टसाध्य वस्तुके सहज सिद्ध हो जानेसे एकदम शंकाका परिहार नहीं होजाता, जबतक कि ठीक ठीक साक्षी न मिले। इसलिये

राजा अपनी शंका निर्मूल करनेके हेतु श्रीगुरुके पास गये, और विनय सहित नमस्कार कर पूछने लगे–

हे धर्मावतार दयालु प्रभु ! श्रीपालके कोढ़ जानेका वृतान्त कृपाकर कहो । तब श्रीगुरुने सब वृत्तांत आद्योपांत अवधिज्ञानके बलसे सुना दिया । सुनते ही राजाकी शल्य निःशेष होगई । इस प्रकार राजा पहुपाल अपनी पुत्री और जंवाई सहित गुरुको नमस्कार कर निज स्थानको गया, और दोनोंको स्नान कराकर अमूल्य वस्त्राभूषण पहिराये, तथा अनेक प्रकारसे पुत्री और जंवाईकी प्रशंसा व सुश्रूषा की । इस तरह वे परस्पर प्रेमपूर्वक अपना अपना समय आनंदसे विताने लगे । हे सर्वज्ञ वीतराग दयालु प्रभु ! **जैसे दिन श्रीपाल व मैनासुंदरीके फिरे ऐसे ही सबके फिरें ।**

उज्जैनीसे श्रीपालका गमन ।

श्रीपालको प्रिया सहित उज्जनीमें रहते हुए बहुत दिन होगये । क्योंकि आनन्दमें समय जाते मालूम नहीं होता था । एक दिन दोनों रात्रिको सुखनींद ले रहे थे कि श्रीपालकी नींद अचानक खुल गई, और उनको एक बड़ी भारी चिंताने घेर लिया । वे पड़े पड़े करवटें बदलने लगे और दीर्घ उस्वास लेने लगे । भला, ऐसी अवस्था जब पतिकी होगई; तब क्या स्त्रीको निद्रा आसकती थी ? नहीं, कदापि नहीं । एक अंगकी पीड़ा दूसरे अंगको अवश्य ही होती है ।

वह पतिपरायणा सती तुरन्त ही जागी और पतिके पैर पक-

ड़कर मसलने तथा पूछने लगी-हे नाथ! चिंताका कारण क्या है? सो कृपाकर कहो। क्या राजाने कुछ कटुवचन कहा है? या स्वदेशकी याद आगई है? या किसीने आपके चित्तको चुरा लिया है? अथवा ऐसा ही कोई और कारण है? हे प्राणाधार! आपको चिंतित देख मुझे अत्यंत चिंता होरही है।

तब श्रीपालने बहुत संकोच करते हुए कहा—प्रिये! और तो कोई चिंता नहीं हैं. केवल यही चिंता है कि यहां रहनेसे सब लोग मुझे राज-जंवाई कहते हैं और मेरे पिताका नाम कोई भी नहीं लेता है। इसलिये वे पुत्र जिनसे पिताका कुल व नाम लोप होजाय, यथार्थमें पुत्र कहलानेके योग्य नहीं हैं। इसी बातका दुःख मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ है। क्योंकि कहा है-"सुता और सुतके विषैं, अन्तर इतनो होय। वह परवंश बढावती, वह निज वंशहि सोय॥ जो सुत तज निज स्वजन पुर, रहे स्वसुर गृह जाय। सो कुपूत जग जानिये. अति निर्लज्ज कहाय॥

इसलिए हे प्रिये! अब मुझे यहां एक २ क्षण वर्ष बराबर बीत रहा है। बस. मुझे यही दुःख है। यह सुनकर मैनासुंदरीने कहा—हे नाथ! यह बिलकुल सत्य है। क्योंकि कहा है—

भाई रहे बहिनके तीर, विन आयुध रण चढे जो धीर।
धन विन दान देन जो कहे, अरु जो जाय सासरे रहे॥
हंस वसे पोखरी जाय, केहरि वसे नगरमें आय।
सती तने मन विकल्प रहे, रणसे सुभट भागवे कहे॥

बोले काग आमकी डाल, नान सरोवर बगुला चाल ।
कुंजर बसे सिंह वन मांहि त्रियमों जो हंसी करांहि ॥
मूरख बांचे महापुराण, कुल भामिन गह खोटी बान ।
इतने जन जग निन्दा लहैं, ऐसे बड़े सयाने कहैं ॥

इसलिये आपका विचार अति उत्तम है। प्रत्येक मनुष्यको अपने कुल, देश, जाति धर्म व पितादि गुरुजनोंके पवित्र नामको सर्वोपरि प्रसिद्ध करना चाहिए; क्योंकि पुत्र ही कुलका दीपक कहा जाता है। जिन पुत्रोंने अपने जाति, कुल, धर्म, देश व पितादि गुरुजनोंके नामका लोप कर दिया यथार्थमें वे पुत्र उस कुलके कलंक हैं, इसलिए हे स्वामी ! यहाँसे चतुरंग सैन्य साथ लेकर आप अपने देशको चलिए और चिंता मेटकर सानन्द स्वराज्य भोगिए।

अहा ! धन्य है मैनासुन्दरीको कि जिसने पतिके मद्विचारमें अपने विचार मिला दिये। यथार्थमें वे ही स्त्रियाँ सराहनीय हैं जो पतिकी अनुगामिनी हों। अन्यथा जो स्त्रियाँ स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल हैं वे केवल बेड़ीकी तरहसे दुःखरूप भयानक बंधन हैं। कहा है—

पति आज्ञा अनुसार जो, चले धन्य वह नारि ।
अरु पति विमुखा जे त्रियां, जैसे तीक्ष्ण कुठारि ॥

अपनी प्रियाके ऐसे वचन सुनकर श्रीपाल बोले—चन्द्रवदने ! आपने कहा सो ठीक है; परन्तु क्षत्री कभी किसीके सामने हाथ नीचा (याचना) नहीं करते। क्योंकि कहा है—

करपर कर निशिदिन करें, करतल कर न करेय ।
जा दिन करतल कर करें, ता दिन मरण गिनेय ॥

इसलिए प्रथम तो मांगना ही बुरा है और कदाचित् यह भी कोई करे तो ऐसा कौन होगा जो अपने हाथमें आया हुआ राज्य दूसरोंको देकर आप स्वयं पराश्रित हो जीवन व्यतीत करेगा ? संसारमें **कनक** और **कामनी** कोई भी किसीको खुशी २ नहीं सोंप देता। और यदि ऐसा भी हो तो मेरा पराक्रम किस तरह प्रगट होगा ? यथार्थमें अपने बाहुबलसे प्राप्त किया हुआ ही राज्य सुखदायक होता है। दूसरे—जहांतक अपनी शक्तिसे काम नहीं लिया अर्थात् अपने बलकी परीक्षा कर उसका निश्चय नहीं कर लिया वहांतक राज्य किस आधारपर चल सकता है ?

तीसरे-शक्तिको काममें न लानेसे कायरता भी बढ़ जाती है—पान सड़े घोड़ा अड़े, विद्या बिसर जाय। बाटी जलै अंगार पर किस कारण यह थाय? उत्तर फेरा नहीं। तात्पर्य—**विद्या अभ्यास-कारिणी** होती है। इसलिए पुरुषको सदैव सावधान ही रहना उचित है। घरमें आग लगने पर कुवा खुदाना वृथा है। ऐसे ही शत्रुके आजानेपर शक्तिकी परीक्षा करना व्यर्थ है। इसलिए हे प्रियतमे! मैं विदेशमें जाकर निज बाहुबलसे राज्यादि वैभव प्राप्त करूँगा। तुम आनन्दसे अपनी सासुकी सेवा माताके समान करना और नित्य प्रति श्री जिनदेवका पूजन, वंदन, स्तवन, दानादि षट्कर्मोंमें साव-धान रहना, पंचाणुव्रत मन, वचन, कायसे पालन करना और किसी प्रकारकी चिन्ता न करना।

पतिके ये वचन उस सतीको यद्यपि दुःखदायक थे और वह स्वप्नमें भी पतिविरह सहन करनेके लिये अत्यन्त कायर थी; परन्तु

जब उसको यह निश्चय होगया कि अब ये नहीं मानेंगे, और अवश्य ही बिदेश जांयगे, तो फिर इस समय इनको छेड़नेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा, किन्तु यात्रामें विघ्न आवेगा, इसलिए छेड़छाड़ करना अनुचित है, ऐसा सोचकर उसने धीमे स्वरसे कहा:—

"प्राणाधार! यद्यपि मैं आपका क्षण विरह सहनेको भी असमर्थ हूं तथापि आपकी आज्ञा मैं शिरोधार्य करती हूं परन्तु यह तो बताइए कि इस अबलाको पुनः आपके दर्शन कबतक मिलेंगे? जिसके सहारे व आशापर चित्तको धैर्य देकर संतोषित किया जाय।"

तब श्रीपालजीने कहा—'प्रिये! तुम धैर्य रक्खो, मैं बारह वर्ष पूर्ण होते ही, पीछे आकर तुमसे मिलूंगा। इसमें किंचित् भी अन्तर न समझना" यह सुनकर मैनासुंदरीने कहा—"हे नाथ! यद्यपि मैंने अपशुकन व आपका चित्त खेदित होनेके भयसे विना आनाकानी किये ही आपका जाना स्वीकार कर लिया है और स्त्रीका धर्म भी यही है कि पतिकी इच्छा प्रमाण प्रवर्तें; परन्तु संसारमें मोह महाप्रबल है, इसलिये मेरा चित्त वारम्वार अधीर होजाता है। अर्थात् आपके चरणकमल छोड़नेको जी नहीं चाहता।

इसलिए यदि आप इस दासीको भी सेवामें ले चलें, तो बड़ा उपकार हो। कारण, बारह वर्ष क्या, दासी तो बाहर पल भी विरह सहनेको असमर्थ है। ऐसी नम्र प्रार्थनाकर, स्वामीकी ओर आशावती हो यह प्रतीक्षा करने लगी कि स्वामी या तो मुझे साथ ले चलेंगे, या अपने जानेका विचार बंद कर देंगे; परन्तु ऐसी आशा करना उसका निरर्थक था। क्योंकि बड़े पुरुष जो कुछ विचार करते

हैं, वह पक्का ही करते हैं, और उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं।
कहा भी है–

यदि महज्जन निजवचन; करैं न जो निर्वाह।
तो उनमें अरु लघुनमें; अन्तर सूझे नांह॥

निज प्रियाको मोहातुर देख श्रीपाल बोले–प्रिये! तुम अधीर मत होओ, मैं अवश्य ही अपने कहे हुए समयपर आ जाऊंगा। संसारमें जीवोंका परम शत्रु यह मोह ही है। जिसने इसको जीता है वे ही सच्चे सुखी हैं। और अधिक क्या कहा जाय? निश्चयसे यदि देखो कि दुःख कोई वस्तु है, तो वह मोहके सिवाय और कुछ भी नहीं है। अर्थात् मोह ही दुःख है। यही इष्टानिष्ट बुद्धि कराकर प्राणियोंको नाना प्रकारके नाच नचाता है। इसलिये इसका परिहार करना ही उत्तम पुरुषोंका काम है। सो चिंता न करो। मैं उद्यमके लिये जा रहा हूँ। उद्यम करना पुरुषका कर्तव्य है। उद्यमहीन पुरुष संसारमें निंद्य और दुःखका पात्र होता है। उद्यमसे ही नर सुर और क्रमशः मोक्षका भी सुख प्राप्त होता है। जो उद्यम नहीं करते उनका जन्म संसारमें व्यर्थ है। कहा है–

धर्मार्थकाममोक्षाणां, यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्यैव, तस्य जन्म निरर्थकम्॥

अर्थात्–धर्म, अर्थ और काम व मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंमेंसे जिसने एक भी प्राप्त नहीं किया उसका जन्म बकरेके गलेमें लटकते हुए पयरहित स्तनके समान निरर्थक है। इसलिये मोह त्यागकर मुझे अनुमति दो।"

तब वह सती कुछ धैर्य धारण करके बोली–स्वामिन्! मुझे भी ले चलो। तब श्रीपाल बोले–"प्रिये! परदेशमें विना सहाय व विना ठिकाने एकाएक स्त्रीको लेजाना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रथम तो लोग अनेक प्रकारकी आशंकाएँ करने लगेंगे, और जिन देशोंमें हम लोग सर्वथा अपरिचित हैं वहांपर हमारा सहायी कौन? दूसरे जबकि मैं उद्यमके अर्थ ही विदेश जारहा हूं तो वहां स्त्रीको संग रखकर उद्यम करना "गधेके सींगवत्" असंभव है। हां, तीर्थयात्रा इत्यादिमें होता तो ठीक ही था।

पुरुषको चाहिये कि परदेशमें जबतक भलीभांति परिचय न हो जाय और उद्यम आदि निश्चित व स्थिर न होजाय, तथा जहांपर स्वपक्ष न होजाय वहांपर स्त्रियादिको कभी साथ न लेजाय। किन्तु उन्हें अपनी माता पिता आदि बड़े जनोंकी रक्षामें छोड़ जाय, अथवा उसके माता पिताके घर (यदि अपने घरमें कोई न हो तो) भेज दे। और पश्चात उक्त बातोंको निश्चय करके उसे बालबच्चों सहित ले जाय। हां! यह बात जरूरी है कि समयानुसार खबर देते लेते रहें। सो हे प्रिये! मैं तो शीघ्र ही आनेवाला हूँ? तू चिंता मत कर।

निदान मैनासुंदरी उक्त सिखामन सुनकर बोली–"स्वामिन्! यदि आप जाते हैं और दासीकी विनती नहीं सुनते, तो जाइए, परन्तु एक प्रार्थना है कि इस दासीसे दासत्व करानेका विचार और पंच परमेष्ठीका ध्यान स्वप्नमें भी न भूलिये, क्योंकि ये ही पंच परमेष्ठी लोकमें मंगलोत्तम और शरणाधार हैं। तथा सिद्धचक्रका आराधन भी सदैव कीजियेगा। अपनी माता व मित्रोंको भी नहीं

भुलाइयेगा। मिथ्या देव, गुरु और धर्मका विश्वास न कीजियेगा। ये ही जीवके प्रबल शत्रु हैं। **जिनदेव, निर्ग्रन्थगुरु और अहिंसाधर्म** ही तारनेवाले हैं। विशेष बात एक यह और है कि—

"नारि जाति अति ही चपल, कीजो नहिं विश्वास।
जेठी मा तरुणी बहिन, लघू सुता गिन तास॥"

अर्थात्-बड़ीको माता, बराबरवालीको बहिन और छोटी स्त्रियोंको बेटीके समान समझियेगा। परदेशमें नाना प्रकारके ढोंगी धूर्त भेषी रहते हैं, इसलिये सोच विचारकर ही कार्य कीजियेगा। स्वामिन्! मैं अज्ञान हूँ, ढीठ होकर आपके सन्मुख यह वचन कहती हूँ, नहीं तो भला मेरी क्या शक्ति जो आपको समझा सकूँ? क्षमा कीजिये। एक बात यह और कहे देती हूँ कि यदि अपनी प्रतिज्ञापर बारह वर्ष पूर्ण होते ही आप न आए तो मैं दूसरे ही दीन प्रातःकाल जिनेश्वरी दीक्षा लेकर इस संसारके जालको तोड़ अविनाशी सुखके लिये इस पराधीन पर्यायसे छूटनेके उपायमें लग जाऊँगी। अर्थात् जिनदीक्षा—आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लूंगी।

तब श्रीपालजीने कहा—"प्रिये! बार२ कहनेसे क्या? जो मेरा वचन है, उसे मैं अवश्य ही पालन करूगा इसके लिये सिद्धचक्रकी साक्षी देता हूं।" ऐसा कहकर ज्यों ही श्रीपालजी चलने लगे, त्यों ही वह पुनः मोहवश स्वामीका पल्ला (चद्दरका खूँट) पकड़कर व्याकुल हो कहने लगी—"हे नाथ! मैं तो जानती थी कि आप अबतक केवल विनोद ही कर रहे हैं, परन्तु आप तो अब हँसीको ही सच्ची करने लगे। क्या सचमुच ही चले जावेंगे? भला,

यह अबला किस प्रकार कालक्षेप करेगी ? स्वामिन् ! कृपा करो, दासीको अभय वचन दो, मैं आपके दर्शनकी प्यासी हूँ। आपके विना मुझे यह सब सामग्री दुःखदाई है। यद्यपि मैनासुन्दरी सब जानती थी, परन्तु पति प्रेम ऐसा ही होता है।

जब श्रीपालजीने देखा कि त्रिया हठ पकड़ रही है, और इससे कार्यमें विघ्न होनेकी संभावना है, तब ऊपरी मनसे कुछ क्रोध करके बोले–"स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा होता है कि वे हजार शिक्षा देनेपर भी अपनी चाल नहीं छोड़तीं, न कार्याकार्य ही विचार करती हैं। बस, छोड़ दे मुझे !"

यह सुन नेत्र भरकर कांपते कांपते मैनासुंदरीने पल्ला छोड़ दिया, और नीची दृष्टिकर स्वामीके चरणोंकी ओर देखने लगी। ठीक है, इसके सिवाय वह और कर ही क्या सकती थी ? श्रीपालजीको उसकी ऐसी दीन दशा देखकर दया आगई। ठीक है, दीनको देखकर किसे न दया होगी ? पाषाणहृदय भी पिगल जायगा, जिसमें भी फिर अबलाओंका दीन होना तो पुरुषोंको और भी विह्वल बना देता है। यद्यपि श्रीपालको दया आगई थीं; परन्तु पुरुषार्थका दूत पीछे लग रहा था। इसलिये वे किसी प्रकार अपने विचारको वदल नहीं सके। किन्तु अपने विचारपर दृढ़ बने रहकर दयार्द्र स्वरसे बोले–

प्रिये ! चिंता न करो। तुम यथार्थमें सती शीलवती साध्वी हो। तुम्हारा रुदन करना, मेरे चित्तको व्याकुल कर रहा है जो कि मेरी यात्रामें विघ्न करनेवाला है, इसीलिये मेरे मुँहसे ये कठोर शब्द निकल गये हैं। तुम ऐसा कभी अपने मनमें नहीं विचारना कि

तुमसे मेरा प्रेम किसी प्रकार कम होगया है, किन्तु जिस प्रकार तुम मेरे जानेसे दुःखित हो, मैं भी तुम्हें छोड़नेमें उससे किसी प्रकार कम दुःखी नहीं हूँ।

"कहन सुननकी बात नहिं, लिखी पढ़ी नहिं जात।
अपने जियसे जानियो; हमरे जियकी बात।"

परन्तु इस समय मुझे एक बार जाना ही उचित है। तुम हठ न करो और हर्षित होकर मुझे जानेके लिये अनुमति दो। निदान मैनासुंदरीने हाथ जोड़ नमस्कार कर पतिके चरणोंमें मस्तक रख दिया। इस प्रकार श्रीपाल स्त्रीको समझाकर डरते डरते माताके पास आज्ञा लेनेको गये। मनमें सोचते जाते थे कि क्या जाने माता आज्ञा देंगी या नहीं? यहांसे तो किसी प्रकार निवटेरा हो गया है।

इस प्रकार सोचते २ जाकर माताके चरणोंमें मस्तक झुका दिया, दोनों हाथोंकी अंगुली जोड़कर दीन हो खड़े हो गये। माता पुत्रका विना समय आगमन देखकर चिंतावती होकर बोली,—

"ए पुत्र! इस समय ऐसी आतुरतासे तेरे आनेका कारण क्या है? तब श्रीपालने अपने मनका सब वृत्तान्त कहकर विदेश जानेकी आज्ञा मांगी। सुनते ही माता अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगी—ए पुत्र! एक तो पूर्व असाता कर्मोंने पहिले ही तुमसे वियोग कराया था सो जैसे जैसे बड़े कष्टसे बहुत दिनोंमें तुमसे मिलकर अपने हृदयकी दाह शांत की थी, परन्तु क्या अब भी निर्दयी कर्म न देख सका जो पुनः पुत्रसे विछोह कराने चाहता है! **ए पुत्र!**

तुझे यह कैसी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ए बेटा ! अभी तो मैं तुझे देखकर तेरे पिताके वियोगके दुःखको भूली हुई हूँ, सो तेरे विना मैं कैसे दिन व्यतीत करूंगी ?"

माताके ऐसे वचन सुनकर श्रीपाल बड़ी नम्रतासे बोले—"हे माता ! मुझे इस समय जाना ही उचित है क्योंकि यहां रहनेसे यद्यपि मुझे कोई दुःख नहीं है, परन्तु मैं राजजँवाई कहकर बुलाया जाता हूं, और मेरे पिताका, कुलका व देशका नाम कोई नहीं लेता है, इसीसे मेरा चित्त व्याकुल है।

क्योंकि जिस पुत्रसे पितादि गुरुजनों कुल व देशका नाम न चले, वह पुत्र नहीं, किन्तु कुलका कलंक है। उनका जन्म ही होना न होनेके समान है, इसलिये माताजी ! मुझे सहर्ष आज्ञा व आशीश दीजिये, जिससे मेरी यात्रा सफल हो। मैं शीघ्र ही (१२ वर्षमें) लौटकर सेवामें उपस्थित होऊंगा। आप श्री जिनेन्द्रका ध्यान कीजिये। और आपकी वधू (मैनासुन्दरी) आपकी सेवामें रहेगी ही तथा सातसौ आज्ञाकारी सुभट भी आपकी शरणमें उपस्थित रहेंगे।"

माता कुंदप्रभा पुत्रका अभिप्राय जान गई, उसे निश्चय हो गया कि अब पुत्र जानेसे न रुकेगा इसलिये हठकर रखना ठीक नहीं है और वह कोई बुरे अभिप्रायसे तो जा नहीं रहा है इत्यादि तब वह अपने मनको दृढ़कर बोली—

"प्रिय पुत्र ! तुझे जानेकी आज्ञा देते हुए मेरा जी निकलता है, परन्तु अब मैं तुझे रोकना भी नहीं चाहती। इसलिये

यदि जाते हो तो जाओ, और सहर्ष जाओ। श्री जिनेन्द्रदेव, गुरु और धर्मके प्रभावसे तुम्हारी यात्रा सफल होवे। परन्तु हे पुत्र! विदेशका काम है, बहुत होशियारीसे रहना। परधन और परत्रिया पर दृष्टि न डालना। सब जीवोंको आप समान जानना। कहा है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः जानाति स पंडितः॥

तथा झूठे व दम्भी (छली) लोगोंका साथ कभी नहीं करना, किसीको भूलकर भी कुवचन नहीं कहना, मद्यपायी मांस भक्षक लोगोंके निकट न रहना न उनसे व्यवहार करना, जुआ (द्यूत) कभी नहीं खेलना, पानी (नदी), ठग, कोतवाल, कृपण, हठी, स्त्री, हथियार, अन्ध पुरुष, नखी पशु, शृंगवाले पशु वेश्या, रोगी, ऋणी, बंधुआ (कैदी), शत्रु, ज्वारी, चोर, असत्यभाषी आदि किसीका विश्वास नहीं करना, क्योंकि इनकी प्रीति गुड़ लपेटी छुरीकी तरह घातक है।

नख्खी, लख्खी, जटाधारी, मुड़े हुए, भस्मधारी, भेषी, व वन-चर, कुब्जक, बौना (वामन), काना, केरा (कंजा नेत्रवाला), छोटी गरदनवाला आदमी, डांकनी, शांकनी, दासी कुट्टनी (दूती) इनका भी विश्वास न करना। स्वस्त्री सिवाय अन्य स्त्रियां माता, बहिन, बेटीके समान जानना। अतिद्रव्य व ऐश्वर्य हो जानेपर भी अहंकार नहीं करना। निरन्तर पंचपरमेष्ठीका ध्यान हृदयमें रखना। भूलकर भी सिवाय जिनेंद्रदेव निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिनवर कथित धर्मके अन्य कुदेव, कुधर्म व कुगुरुकी सेवा नहीं करना, और

सिद्धचक्र व्रतका मन वचन कायसे पालन करते रहना। ए पुत्र! ए मेरे वचन दृढ़कर पालना, भूलना नहीं. ऐसा कहकर माताने आशीर्वाद दिया:—

" श्री बढ़े अरु अतुल बल, बढ़े धर्मसे नेह
चव रंग दलको संग ले, आवो सुत निज गेह॥
धन्य महूरत धन घड़ी, धन्य सुवासर सोय।
जा दिन बहुरि कुशल सहित, नैनन देखूं तोय॥

ऐसे शुभ वचन कहकर माता श्रीपालके मस्तकपर दही दूध, और अक्षत डालती हुई, और मस्तकमें मंगलीक कुमकुमका तिलक करके श्रीफल दिया, तथा निछरावल की। धायने भी आकर शुभ सूकी दी सो श्रीपालने हर्षित होकर ली। फिर सर्व स्वजनोंने सहर्ष आज्ञा दी इस प्रकार उसी रात्रिके पिछले पहरमें श्रीपालजीने सर्व उपस्थित जनोंको यथायोग्य धैर्य देकर **पंचपरमेष्ठीका उच्चारण** करते हुए. हर्षित हो, उत्साह सहित प्रयाण किया और सब स्वजन श्रीपालको विदाकर निज स्थानको पधारे।

विद्याओंकी सिद्धि।

श्रीपालजी घरसे प्रस्थान कर अपने साथ चन्द्रहास खड्ग और चमर आदि सम्पूर्ण आयुध साथ लिये हुए अति शीघ्रतासे अनेक वन, पर्वत, गुफा, सरोवर, खाई, नदी, पुर, पट्टनादिको उलंघन करते हुए पांव प्यादे चलते चलते **वत्सनगरमें** आये। और उस नगरकी शोभा देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। क्योंकि उस नगरमें नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित बड़ेर उत्तंग महल यथाक्रमसे बने हुए थे। द्वारपर सुवर्ण कलश स्थापित थे।

नगरमें चतुर्वर्णके नरनारी अपने २ योग्य स्थानोंमें निवास करते थे। बाग बगीचोंसे नगर सुसज्जित होरहा था। उसी नगरके निकट नन्दन वनके समान एक महारमणीक उपवन दिखाई पड़ा। सो श्रीपालजीने उसकी स्वाभाविक सुंदरता देखनेकी इच्छासे उसमें प्रवेश किया। उस स्थानकी शोभाको देखते और मन्द सुगन्ध पवनसे चित्तको प्रसन्न करते हुए जब वे वहां फिर रहे थे कि उन्होंने उसी (चंपक) वनमें एक वृक्षके नीचे किसी वीर पुरुषको वस्त्राभूषणसे अलंकृत, क्षीण शरीर और क्लेशयुक्त होकर मंत्र जपते हुए देखा।

वे उसे देखकर सोचने लगे कि इतना क्लेश उठानेपर भी मालूम होता है कि इसे मंत्र सिद्ध नहीं हुआ है। कदाचित इसीसे उसका चित्त उदास होगया होगा। तब श्रीपालने उसके निकट जाकर पूछा:-

"हे मित्र! तुम कौनसे मंत्रका आराधन कर रहे हो कि

जिससे तुम्हारे चित्तकी एकाग्रता नहीं होती है ?" यह वचन सुन कर वह वीर चौंक उठा और इनका रूप देखकर हर्षित हो बहुत आदरपूर्वक विनय सहित बोला—'हे पथिक! मुझे मेरे गुरुने विद्याका मंत्र दिया था, सो मैं उसीका जाप कर रहा हूं। परन्तु मेरा चंचल चित्त स्थिर नहीं रहता है, और इससे मंत्र भी सिद्ध नहीं होता है। इसलिये तुम इस विद्याका साधन करो। क्योंकि तुम सहनसील मालूम होते हो, सो कदाचित् तुम्हें यह सिद्ध होजाय। तब श्रीपालजी बोले—

भाई! आपका कहना ठीक है; परन्तु सोना रत्नके साथ ही शोभा देता है, साधु क्षमासे शोभा देता है, जिनेन्द्रका स्तवन प्रातःकाल ध्यानपूर्वक ही शोभा देता है, राजा सैन्य सहित ही सोहता है, श्रावक दयासे ही सोहता है, बालक खेलते हुए सोहता है. स्त्री शील होनेसे शोभा देती है, पंडित शास्त्र पढ़ते हुए ही शोभा देते हैं, द्रव्य दानसे शोभा पाता है, सरोवर कमलसे शोभता है, शूर युद्धमें शोभा देता है, हाथी सैन्यमें शोभता है, वृक्ष ठंडी और सघन छायासे सोहता है, दूत कठिन वचनोंसे, कुल सुपुत्रसे, धीर परोपकारसे, शरीर निर्भयतासे और मंत्रसाधन स्थिरचित्तवालोंको ही शोभा देता है। इसलिये हे भाई! मैं तो पथिक (रास्तागीर) हूँ, मुझे स्थिरता कहां? और मंत्रसिद्धि कैसी?"

यह सुनकर वह वीर बोला—"हे कुमार! आपका तेजस्वी मुखारविंद ही बता रहा है कि आप इसके योग्य हैं। इसलिये मुझे अभय वचन दो। आप मेरे ही भाग्यसे यहां आये हो। इस

लिये अब आप अविलम्ब स्वस्थचित होकर इस मंत्रका आराधन करो। आपको श्रीगुरुकी कृपासे यह विद्या सहज ही सिद्ध होजायगी। ऐसा कहकर वह मंत्र और विधि जैसा उसके गुरुने बतलाया था उसने श्रीपालको बतला दी।

तब श्रीपालजी उसके बारम्वार कहने व आग्रह करनेसे मन वचन कायकी चंचलताको छोड़कर शुद्धतापूर्वक निश्चल आसन लगाकर मंत्र जपनेके लिये बैठ गये। जिससे एकाग्र चित्त होनेके कारण उनको एक दिनमें ही वह **विद्या सिद्ध** होगई। तब सफलता हुई देखकर वह वीर उठा और श्रीपालको प्रणाम व स्तुति करके कहने लगा कि धन्य है आपके साहस व धीरताको! यह विद्या अब आप अपने पास रखिये, और मुझे कृपाकर आज्ञा दीजिये कि मैं अपने घर जाऊँ।

तब श्रीपालजी बोले—भाई! मुझे यह उचित नहीं है कि रास्ता चलते किसीकी वस्तु छीन लूँ। पराये पुत्रसे स्त्री पुत्रवती नहीं कहलाती है, पराये धनसे कोई धनी नहीं होता; त्यों ही पराई विद्या व बलसे बली होना नहीं समझना चाहिये, और फिर मैंने किया ही क्या है? केवल आपके कहनेसे अपनी शक्तिकी परीक्षा की है। सो आप अपनी विद्या लीजिये। ऐसा कह वह विद्या उसी विद्याधर वीरको देकर आप अलग होगये। तब विद्याधरने स्तुतिकर कहा—"भो स्वामिन्! यदि आप इसे नहीं स्वीकार करते तो ये **जल-तारिणी** व **शत्रु-निवारिणी** दो विद्याएँ अवश्य ही भेंटस्वरूप स्वीकार कीजिये, और मुझपर अनुग्रहकर मेरे गृहको अपने पवित्र चरणकमलोंसे पवित्र

कीजिये। ऐसा कहकर उक्त दोनों जल-तारिणी और शत्रु-निवारिणी विद्याएँ देकर बड़े आदर सहित वह श्रीपालजीको स्वस्थान पर लेगया, और कुछ दिनतक अपने यहाँ रख उनकी बहुत शुश्रूषा की। पश्चात् उनको इनकी इच्छानुसार विदाकर आप सानन्द आयु व्यतीत करने लगा। इस प्रकार श्रीपालजीने घरसे निकल कर वत्सनगरके विद्याधरको अपना सेवक बनाया और उससे उक्त दो विद्याएँ भेट-स्वरूप ग्रहण कर आगेको प्रस्थान किया। ठीक हैः—

"स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।"

अर्थात्—"गुणका आदर ठौर सब, राजाका निज देश"

तात्पर्य—प्रत्येक पुरुषको गुणवान् होनेका प्रयत्न करना चाहिये, न कि द्रव्यवान् होनेका; क्योंकि गुणवानके आश्रय ही द्रव्य रहता है; इसलिये गुणवान् होना ही श्रेयस्कर है।

धवलसेठका वर्णन।

श्रीपालजी विद्याधरसे जल तारिणी और शत्रु-निवारिणी दो विद्याएँ ग्रहणकर वत्सनगरसे निकलकर और अनेक वन उपवनोंकी शोभा देखते हुए **भृगुकच्छपुर** [भड़ोंच] आये। वहां नगरकी शोभा देखकर वे चित्तमें प्रसन्न हुए। क्योंकि यह नगर समुद्रके तुल्य नर्मदा नदीके किनारे होनेसे अतिशय रमणीक भासता था। श्रीपाल घूमते २ उस नगरके किसी उपवनमें जापहुँचे और वहाँ पास ही एक टेकड़ीपर श्रीजिनभवन देखकर अति आनंदित हुए और प्रभुकी भक्ति वंदना कर अपना जन्म धन्य माना।

इस प्रकार वे सिद्धचक्रका आराधन करते हुए कुछ कालतक उसी नगरमें रहे।

एक दिन **कोशांबी** नगरीका एक धनिक व्यापारी (**धवलश्रेष्ठि**) व्यापारके निमित्त देशांतरको जानेके लिये **पांचसौ जहाज** भरकर इसी नगरके समीप आया। पवनके योगसे उसके जहाज पासकी एक खाड़ीमें जा पड़े। उस सेठके साथ जितने आदमी थे, उन सबने मिलकर अपनी शक्तिभर उपाय किया; परन्तु वे जहाज न चला सके। तब सेठको बड़ी चिंता हुई, उसका शरीर शिथिल हो गया।

निदान वह उदास होकर सोचते २ जब कुछ उपाय न बन पड़ा तब लाचार हो नगरमें आया और किसी नगरनिवासी निमित्तज्ञानीसे अपना सब वृत्तांत कहकर जहाजके अटक जानेका कारण पूछा। तब उस नगरनिवासी निमित्तज्ञानी (ज्योतिषी) ने कहा—हे सेठ ! आपके अशुभ कर्मके उदयसे ये जहाज अटक गये हैं। इनको जलदेवोंने कील दिये हैं, सो या तो कोई महागुणवान्, लक्षणवंत, गंभीर पुरुष, जो निर्भय हो, वह आकर इन जहाजोंको चलावेगा तो चलेंगे अथवा यहाँपर एक ऐसे ही महापुरुषका बलिदान करना होगा। यह सुनकर सेठ अपने डेरेमें आया, और मंत्रियोंसे मंत्र करके उस नगरके राजाके समीप गया और बहुमूल्य भेंट देकर राजाको प्रसन्न किया और मौका पाकर अपना सम्पूर्ण वृत्तांत कह राजासे एक आदमीके बलि देनेकी आज्ञा प्राप्त कर ली। तुरन्त ही ऐसा मनुष्य जो अकेला गुणवान् और निर्भय हो, उसे ढूँढ़नेके लिये चारों ओर

आदमी भेजे। सो नौकर फिरते २ उसी बगीचेमें, जहां कि श्रीपालजी एक वृक्षके नीचे शीतल छायामें सो रहे थे, पहुंचे।

उनको देखकर वे विचारने लगे कि हमें जैसा पुरुष चाहिये था, यह ठीक वैसा ही मिल गया है। बस, अपना काम बन गया। परन्तु उन्हें जगानेकी किसीकी भी हिम्मत नहीं पड़ती थी। सब लोग परस्पर एक दूसरेको जगानेके लिये प्रेरणा कर रहे थे; कि इतनेमें श्रीपालजीकी नींद अपने आप ही खुल गई। उन्होंने आंखें खुलते ही अपने आपको चारों ओरसे मनुष्योंसे घिरा हुआ देखा; तब वे निःशंक होकर बोले:-

"तुम लोग कौन हो? और मेरे पास किस लिये आये हो? यह सुनकर वे नौकर बोले:-"हे स्वामिन्! कौशांबी नगरीका एक धनिक व्यापारी, जिसका नाम धवलसेठ है, व्यापार निमित्त पांचसौ जहाज लेकर विदेशको जा रहा था, यहां किसी कारणसे उसके जहाज खाड़ीमें अटक गये हैं सो उसने मंत्रियोंसे मंत्र करके विवेक रहित हो, जहाज चलानेके लिये एक आदमीकी बलि देना निश्चय कर हमको मनुष्यकी तलाशमें भेजा है।

अभीतक ऐसा मनुष्य हमको कोई मिला नहीं है, और सेठका डर भी बहुत लगता है कि खाली जांयगे तो वह मार डालेगा और नहीं जावेंगे तो हमको ढूंढ़कर अधिक कष्ट देवेगा। इसलिये अब आपका शरण है, किसी तरह बचाइये। यह सुनकर श्रीपाल बोले- "भाइयो! तुम भय मत करो। तुम कहो तो क्षणभरमें करोड़ों

चोरोंका मर्दन कर डालूं और कहो तो वहां चलकर सेठका काम करदूं। तब वे आदमी स्तुति करके गद्गद वचनोंसे बोले-

"स्वामिन् ! यदि आप वहां पधारेंगे तो अतीव कृपा होगी, और हम लोगोंके प्राण भी बचेंगे व आपका यश बहुत फैलेगा। आप धीरवीर हो, आपके प्रसादसे सब काम होजायगा। यह सुनकर श्रीपालजी तुरन्त ही यह विचारकर कि देखें अदृष्ट क्या है ? क्या२ कौतुक होता है ? चलकर परीक्षा करूं। यह विचार करके उन लोगोंके साथ चलकर शीघ्र ही धवलसेठके पास पहुंचे।

वे लोग सेठसे हाथ जोड़कर बोले-"हे सेठ! आप जैसा पुरुष चाहते थे, सो यह ठीक वैसा ही लक्षणवन्त है। अब आपका कार्य निःसंदेह हो जायगा। यह सुनकर उस लोभांध सेठने विना ही कुछ सोचे और विना ही पूछे कि तुम कौन हो? कहांसे आये हो? श्रीपालको बुलाकर उबटन कराकर स्नान करवाया, इतर फुलेल चंदनादि लगाकर उत्तम२ वस्त्राभूषण पहराये, और बड़े गाजे बाजे सहित उस स्थानपर जहां जहाज अटक रहे थे, ले गये।

जब वहां शूरवीरोंने इनके मस्तकपर चलानेके लिये खड्ग उठाया; तब श्रीपालजी कौतुकसे मनमें यह विचारते हुए कि अब इन सबका काल निकट आया है। इसलिये वे बोले-

"अरे सेठ ! तुझे यहां वध करनेसे मतलब है या कि अपने जहाजोंको चलानेसे? सेठने उत्तर दिया-हमको जहाज चलाना है। यदि तू चला देवेगा, तो तुझे फिर कोई कष्ट देनेवाला नहीं है। तब श्रीपालजी बोले-"अरे मूर्ख ! तू लोभवश यहां नरबलि देनेको

तैयार होगया, और दया धर्मको बिलकुल जलांजुलि दे दी। ठीक है–" **अर्थी दोषं न पश्यति** " कहा भी है–

" लोभ बुरा संसारमें, सुध बुध सब हर लेय।
बाप बखानो पापको, शुभ्र पयानो देय॥ "

क्या तू यह जानता था कि मैं यहां तेरी इच्छा अनुसार बलि होजाऊंगा? बता तो तेरे पास कितने शूरवीर हैं? उन सबको एक ही वारमें चूरचूर कर डालूंगा। देखूँ, कौन साहस कर मेरे सामने बलि देनेको आता है? कायरों! आओ! शीघ्र ही आओ! देर मत करो! और मेरे पुरुषार्थको देखो! दुष्टो! तुमको कुछ भी लज्जा भय व विवेक नहीं, जो केवल लोभके वश होकर अनर्थ करनेपर कमर बांधली है। आओ, मैं देखता हूं कि तुमने अपनी२ माताओंका कितना दूध पिया है? श्रीपालजीके ऐसे साहस युक्त निर्भय वचन सुनकर **धवलसेठ** और उसके सब आदमी मारे भयके कांपने लगे, और विनय सहित बोले—

" स्वामिन्! हम लोग अविवेकी हैं। आपका पुरुषार्थ विना जाने ही हमने यह खोटा साहस किया था। आप दयालु, साहसी, न्यायी और महान गुणवान् हैं। आपकी बड़ाई कहांतक करें? क्षमा करो, प्रसन्न होओ और हम लोगोंका संकट दूर करो। इस प्रकार अनुपम विनययुक्त वचनोंसे श्रीपालजीको दया आगई। इस लिए उन्होंने आज्ञा दी–" अच्छा, तुम लोग अपने जहाजोंको शीघ्र ही तैयार करो। "

तुरन्त ही सब जहाज तैयार किये गये! जहाजोंको तैयार

देखकर श्रीपालजीने पंचपरमेष्ठीका जाप करके **सिद्धचक्रका आराधन** किया। और ज्यों ही उनको ढकेला कि वे सब जहाज चलने लगे। सब ओर **जयजयकार** शब्द होने लगा, खुशी मनाई जाने लगी, बाजे बजने लगे। सब लोग श्रीपालजीके साहस, रूप, बल व पुरुषार्थकी प्रशंसा करने लगे, और सबने उनको अपने साथ ले जानेका विचार करके विनय की कि यदि आप हम लोगोंपर अनुग्रह कर साथ चलें, तो हमारी यह यात्रा सफल हो।

तब श्रीपालजीने कहा—" सेठजी, यदि आप अपनी कमाईका दशांश भाग १/१० मुझे देना स्वीकार करें तो निःसंशय मैं आपके साथ चलूं " सेठने यह बात स्वीकार की और श्रीपालजीने धवलसेठके साथ प्रस्थान किया।

धवलसेठको चोरोंसे छुड़ाना।

समुद्रमें जब कि धवलसेठके जहाज चले जा रहे थे और सब लोग अपने२ रागमें लवलीन थे अर्थात् कोई श्रीजीकी आराधना करते थे, कोई नाचरंगमें रंजित थे, कोई समुद्रको देखकर उसकी लहरोंसे भयभीत हो कायरसे हो रहे थे, कि उसी समय मरजिया (जहाजके सिरेपर बैठकर दूरतक देखनेवाला) एकदम चिल्ला उठा—शूरवीरो ! होशयार हो जाओ। अब असावधानीका समय नहीं है। देखो, सामनेसे एक बड़ा भारी डांकुओंका दल आरहा है। उनमें बड़े२ वीर लोग दृष्टिगोचर होते हैं, जो कि हथियारबन्द हैं।

उसके ऐसा कहतेर ही जहाजमें एकदम खलबली मच गई। सामन्त लोग हथियार लेकर सामने आगये और कायर भयभीत होकर यहां वहां छुपने लगे। देखते ही देखते लुटेरोंका दल निकट आगया और उन्होंने आकर सेठके शूरोंको ललकारा।

अरे मुसाफिरो! ठहरो, कहां जाते हो? अब तुम्हारा निकल जाना सहज नहीं है। या तो हमारा साथ स्वीकार करो, या अपनी सब सम्पत्ति हमें सोंपकर अपना मार्ग लो, अन्यथा तुम्हारा यहांसे जाना नहीं हो सकता। यदि तुममें कोई साहसी है तो सामने आजावे। फिर देखो, कैसा चमत्कार दिखाई पड़ता है। सेठके शूर-वीर उन डांकुओंकी ललकार सह न सके, तुरत ही टीड़ी दलके समान टूट पड़े, और दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। बहुतसे डांकु मारे गये, और कई पकडे भी गये, जिससे वे भाग पड़े और सेठके दलमें आनन्द ध्वनि होने लगी, परन्तु इतनेहीसे इस आप-त्तिका अन्त नहीं हुआ। वे डांकू लोग कुछ दूरतक जाकर पुनः इकट्ठे हुए और स्वस्थचित्त हो परस्पर सलाह कर यह निश्चय किया, कि एक वार फिर धावा मारना चाहिये।

बस, उन लोगोंने पुनः आकर रंगमें भंग डाल दी, और भूखे सिंहकी तरह सेठके जहाजोंपर टूट पड़े। इस समय डांकुओंकी बाजी रह गई और वे लोग बातकी बातमें धवलसेठको जीता ही बांधकर ले गये। यह देख सेठकी सारी सैनामें कोलाहल मचगया। यहांतक तो श्रीपालजी चुपचाप बैठे हुए यह सब कौतुक देख रहे थे। सो ठीक है, क्योंकि धीरवीर पुरुष छोटी २ बातोंपर ध्यान

नहीं देते हैं, क्षुद्र पुरुषोंपर उनका क्रोध नहीं होता है, चाहे कोई इस तरहका कितना ही उपद्रव क्यों न करे।

जैसे हाथीके ऊपर बहुतसी मक्खियां भनभनाया करती हैं, परन्तु उसे कुछ नुकसान नहीं पहुंचा सकती हैं, ऐसा समझकर हाथी उनकी कुछ परवाह नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि मेरे केवल कानके हिला देनेसे ही ये सब दिशा विदिशाओंकी शरण लेने लगेंगी—भाग जावेंगी वैसे ही धीरवीरोंको अपने बलका भरोसा रहता है। कहा भी है—

"गीदड़ आये गोद, सिंह नहिं हाथ पसारे।
महामत्त गजराज, देखकर कुम्भ विदारे॥
तैसे ही सामन्त, लड़ें नहिं कायर जनसे।
देख बली परचण्ड, भगें नहिं कबहूं रणसे॥
प्रबल शत्रु मद परिहरें, तो लघुकी क्या बात।
कै जूझें रणके विषे, कै वन कर्म खिपात॥"

निदान सेठको बांधकर लेजाते हुए देखकर श्रीपालसे रहा न गया, इसलिये वे तुरन्त उठ खड़े हुए। तब इन्हें उठा देख सेठके आदमी रुदन करते हुए आये और करुणाजनक स्वरसे बोले—

स्वामिन्! बचाओ। देखो, सेठको डांकू बांधे लिये जारहे हैं। श्रीपाल उनकी दीनवाणी सुनकर और उन डांकुओंकी निष्ठुरताको देखकर बोले—

" अरे वीरो ! धैर्य रक्खो ! चिंता न करो ! मैं देखता हूं चोरोंमें कितना बल है ! अभी बातकी बातमें सेठको छुड़ाकर लाता हूं। श्रीपालजीके वचनोंसे सबको सन्तोष हुआ और श्रीपालने तुरन्त ही शस्त्र धारणकर चोरोंको सामने जाकर ललकारा:-

अरे नीचो ! क्या तुम मेरे सामने सेठको ले जासक्ते हो ? कायरो ! खड़े रहो और सेठको छोड़कर अपनी क्षमा कराओ, नहीं तो अब तुम्हारा अन्त ही आया जानो ! श्रीपालकी यह सिंहगर्जना सुनने मात्रसे ही डांकू लोग मृगदलके समान तितरबितर होगये और किसी प्रकार अपना बचाव न देखकर थरर कांपने लगे । निदान यह सोचकर कि यदि मरना होगा तो इन्हींके हाथसे मरेंगे, अब तो इनका शरण लेना ही श्रेष्ठ है । यदि इन्हें दया आगई तो बच भी जावेंगे नहीं तो ये एक एकको पकड़र कर समुद्रमें डुबाकर नाम-निःशेष कर देंगे । यह सोचकर डांकू लोग श्रीपालके शरणमें आये और सेठका बन्धन छोड़कर नतमस्तक होकर बोले-

"स्वामिन् ! हम लोग अब आपकी शरण हैं, जो चाहें सो कीजिये !" तब श्रीपालने धवलसेठसे पूछा-" तात ! इन लोगोंके लिये क्या आज्ञा है ?" धवलसेठ तो क्रूर चित्त व अविचारी था, बोला-इन सबको बहुत कष्ट देकर मारना चाहिये । तब श्रीपाल उसके कठोर वचन सुनकर बोले-"तात ! उत्तम पुरुषोंका कोप क्षणमात्रका होता है और शरणमें आये हुयेको तो कोई नहीं मारता। दया मनुष्योंका प्रधान भूषण है । दयाके विना मनुष्य और सिंहादि क्रूर जीवोंमें क्या अंतर है ? दयाके विना जप तप शील संयम

योग आचरण सब झूठे हैं - केवल कायक्लेश मात्र हैं। इसलिये दया कभी नहीं छोड़ना चाहिये। और फिर जब हम सरीखे पुरुष आपके साथ हैं तो आपको चिन्ता ही किस बातकी है ?"

तब लज्जित होकर सेठने कहा—हे कुमार! आपकी इच्छा हो सो करो। मुझे उसीमें संतोष है। तब श्रीपालजी उन चोरोंको लेकर अपने जहाजपर आये और सबके बंधन छोड़कर बोले—वीरो! मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया। आप यदि हमारे स्वामीको पकड़कर न ले जाते तो यह समय न आता, इत्यादि। सबसे क्षमा कराकर सबको स्नान कराया, और वस्त्राभूषण पहिराकर सबको मिष्टान्न भोजन कराया। तथा पान इलायची इत्र फुलेलादि द्रव्योंसे भले प्रकार सन्मानित किया। वे डांकू श्रीपालजीके इस वर्तावसे बड़े प्रसन्न हुए, सहस्रमुखसे स्तुति करने लगे और अपना मस्तक श्रीपालके चरणोंमें धरकर बोले—

"हे नाथ! हमपर कृपा करो! धन्य हो आप! आपका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। इस तरह परस्पर मिलकर वे डांकू श्रीपालसे विदा होकर अपने घर गये और श्रीपाल तथा धवलसेठ आनंदसे मिलकर अपनी आगामी यात्राका विचारकर प्रयाण करनेको उद्यमी हुए।

डाकुओंकी भेंट ।

वे डांकू लोग श्रीपालसे विदा होकर अपने स्थानपर गये और श्रीपालके साहस व पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे कि धन्य है उस वीरका बल कि जिसने विना हथियारके इतने डाँकू बांध लिये और फिर सबको छोड़कर उनके साथ बड़ा भारी सलूक किया । इसलिये इसको इसके बदले अवश्य ही कुछ भेंट करना चाहिये। क्योंकि हम लोगोंने बहुतसे डांके मारे, और अनेक पुरुष देखे हैं, परन्तु ऐसा महान पुरुष आजतक कहीं नहीं देखा है । इसने पूर्वजन्मोंमें अवश्य ही महान तप किया है, या सुपात्र दान दिया है, इसीका यह फल है । ऐसा विचारकर वे लोग बहुतसा द्रव्य सात जहाजोंमें भरकर श्रीपालके निकट आये । और विनय सहित भेंट करके विदा होगये । ठीक है, पुण्यसे क्या नहीं होसक्ता है ? कहा है—

> "वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
> सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थलं वा, रक्ष्यंति पुण्यानि पुरा कृतानि ।।"

अर्थात् वनमें, रणमें, शत्रुके सन्मुख, जलमें, अग्निमें, महासागरमें, पर्वतकी शिखरपर, सोते हुए, प्रमाद अवस्थामें, अथवा विषम स्थलमें पूर्व पुण्य ही सहायता करता है । तात्पर्य यह है कि जीवोंको सदैव अपने भाव उज्वल रखना चाहिये, सदा सबका भला और परोपकार करना चाहिये। क्योंकि पुण्यके उदयसे शत्रु भी मित्र और पापोदयसे मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ।
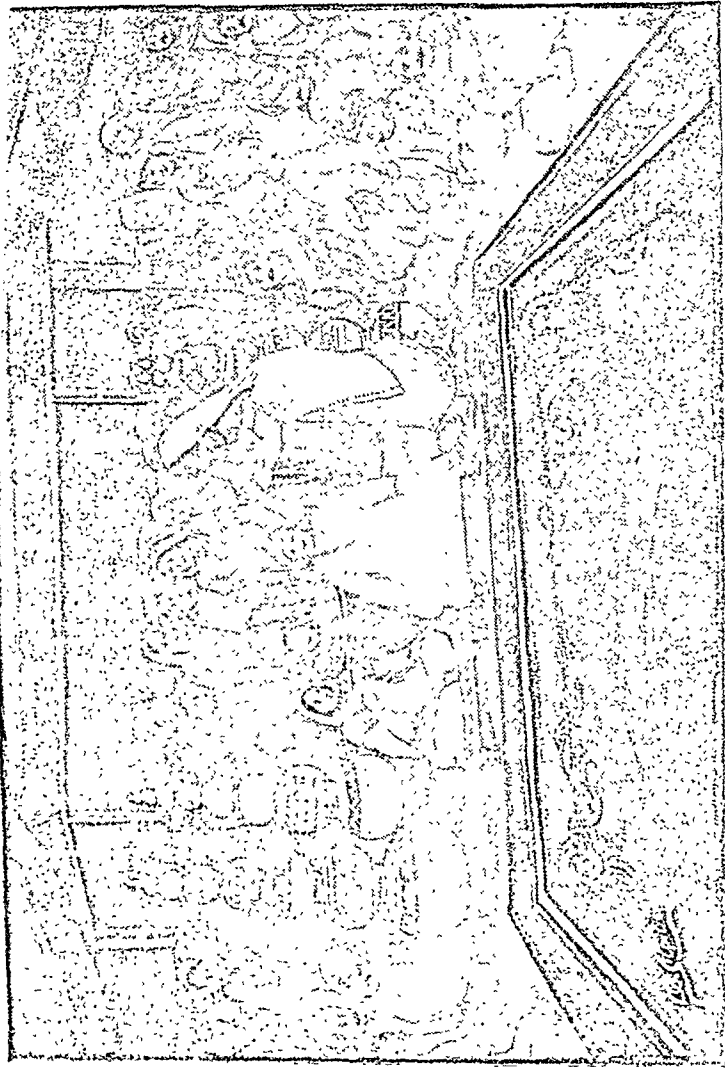
श्रीपाल और रयनमंजूषाके विवाहका दृश्य। (देखो पृ० १०७)

श्री महोदय प्रेस भावनगर.

" श्री जैन आत्मानंद सभा "ना बंधुकृत्यथी.

रयनमंजूषाकी प्राप्ति।

इस तरह श्रीपाल उन डाँकुओंसे रत्नोंके सात जहाज भेंट लेकर और उनको अपना आज्ञाकारी बनाकर धवलसेठके साथ २ रातदिन प्रयाण करते हुवे बड़े आनन्द और कुशलतासे हंसद्वीपमें पहुँचे। यह द्वीप बन उपवनोंसे सुशोभित था। इसमें बड़ी २ अठारह और छोटी २ रत्नोंकी अनेक खानें थीं। गजमोती बहुतायतसे मिलते थे। सोने चांदीकी भी बहुतसी खानें थीं। चंदनके बनोंकी मंद सुगन्ध पवन चित्तको चुरा लेती थी। केशरके बाग अतिशोभा दे रहे थे। कस्तूरीकी सुगंध भी मस्तकको तहस नहस किये देती थी। तात्पर्य यह कि द्वीप अत्यन्त शोभायमान था। ऐसी वस्तु कदाचित् ही कोई होगी, जो वहां पैदा न होती हो। वहांपर रहनेवाले मनुष्य प्रायः सभी धन कण कंचनसे भरपूर थे। दुःखी दरिद्री दृष्टिगोचर नहीं होते थे। नगरमें बड़े २ ऊंचे महल बन रहे थे।

इस द्वीपका राजा कनककेतु और रानी कंचनमाला थी। ये दंपति सुखपूर्वक काल व्यतीत करते और न्यायपूर्वक प्रजाको पालते थे। राजाके दो पुत्र और रयनमंजूषा नामकी एक कन्या थी। सो जब वह कन्या यौवनवती हुई, तब राजाको चिंता हुई, कि इस कन्याका वर कौन होगा? यह पूछनेके लिये राजा अपने दोनों पुत्रोंको लेकर उद्यानकी ओर मुनिराजकी तलाशमें गया, तो एक जगह वनमें अचल मेरुवत् ध्यानारूढ़ परम दिगंबर मुनिको देखा। तीनों वहां जाकर भक्ति सहित नमस्कारकर तीन प्रदक्षिणा देकर बैठ गए

और जब मुनिराजका ध्यान खुला तब वे विनयसहित पूछने लगे—

हे प्रभो ! आप जगतसे पूज्य, करुणासागर, कुमतिविनाशक, ज्ञानसूर्य, शिवमगदर्शक, और समस्त दुःखहरण करनेवाले हो। हम अल्पबुद्धि कहांतक आपकी स्तुति करें ? निराश्रितको आश्रय देनेवाले सच्चे हितू आप ही हैं। हे दीन दयालु प्रभो ! मेरे मनमें एक चिंता उत्पन्न हुई है। वह यह है कि मेरी पुत्री रयनमंजूषाका वर कौन होगा ? सो कृपाकर बताइये, जिससे मेरी चिंता मिटे। और संशय दूर हो।

तब वे परम दयालु समस्त शास्त्रोंके पारङ्गत मुनिराज अवधिज्ञानसे विचार करके बोले—"हे राजन् ! सहस्रकूट चैत्यालयके वज्रमयी कपाट जो महापुरुष उघाड़ेगा, वही इस पुत्रीको वरेगा।" तब राजा प्रसन्नचित्त हो नमस्कार कर अपने घर आया, और उसी समय नौकरोंको आज्ञा दी कि तुम लोग सहस्रकूट चैत्यालयके द्वारपर पहरा दो, और जो पुरुष आकर वहांके वज्रमई किवाड़ उघाड़े उस पुरुषका भलेप्रकार सन्मान करो और उसी समय आकर हमको खबर दो। राजाकी आज्ञा पालकर नौकरोंने उसी समयसे वहां पहरा देना आरम्भ कर दिया।

धवलसेठने यहांकी शोभा और व्यापारका उत्तम स्थान देखकर जहाजोंके लंगर डाल दिये, और नगरके निकट डेरा किया तथा धवलसेठ आदि कुछ आदमी बाजारकी हालचाल देखनेको नगरमें गये। श्रीपाल भी गुरुवचनको स्मरण करके कि जहां जिनमंदिर हो वहांपर प्रथम ही जिनदर्शन करना, नित्य षट् आवश्यक क्रिया-

ओंकी यथाशक्ति पूर्णता करना, इत्यादि जिनमंदिरकी खोजमें गये। सो अनेक प्रकार नगरकी शोभा देखते और मनको आनन्दित करते हुए वे एक अति ही रमणीक स्थानमें आये। वहां अतिविशाल उत्तंग सुवर्णका बना हुआ एक सुंदर मंदिर देखा। देखते ही आनंदित हो मंदिरके द्वारपर पहुंचे तो देखा कि दरवाजा क्यों बंद है? तब वे पहरेदार विनय सहित कहने लगे—

"महाराज! यह जिनमंदिर है। वज्रके कपाटोंसे बंद कराया गया है। इसमें और कुछ विकार नहीं है, परीक्षा निमित्त ही बंद किये गये हैं। सो आजतक तो ये किवाड़ किसीसे नहीं उघाड़े गये हैं। अनेकों योद्धा आये और अपना २ बल लगाकर थक गये। परन्तु किवाड़ न उघड़े।"

श्रीपाल द्वारपालोंके वचन सुनकर चुप होरहे और मनमें हर्षित होकर सिद्धचक्रका आराधनकर ज्यों ही किवाड़ हाथसे दबाये त्यों ही वे खटसे खुल गये। तब श्रीपालने हर्षित होकर 'ॐ जय निःसहि, जय निःसहि, जय निःसहि, जय जय जय" इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए भीतर प्रवेश किया। और श्री जिनके सन्मुख खड़े होकर नीचे लिखे अनुसार स्तुति करने लगे:—

श्री जिनविंब लखो मैं सार, मनवांछित सुख लहो अपार।
जय जय निःकलंक जिनदेव, जय जय स्वामी अलख अभेव॥
जय जय मिथ्यातम हर सूर, जय जय शिव तरुवर अंकूर।
जय जय संयमवन घनमेह, जय जय कंचनसम द्युति देह॥

जय जय कर्म विनाशन हार, जय जय भगवत् जग आधार।
जय कंदर्प गज दलन मृगेश, जय चारित्र धुरावर शेष ॥
जय जय क्रोध सर्प हत मोर, जय अज्ञान रात्रिहर भोर।
जय जय निराभरण शुभ संत, जय जय मुक्ति कामिनीकंत॥
बिन आयुध कुछ शंक न रहे, रागद्वेष तुमको नहिं चहे।
निरावरण तुम हो जिन चन्द्र, भव्य कुमुद विकसावन कंद॥
आज धन्य वासर तिथि वार, आज धन्य मेरो अवतार।
आज धन्य लोचन मम सार, तुम स्वामी देखे जु निहार॥
मस्तक धन्य आज मो भयो, तुम्हरे चरण कमलको नयो।
धन्य पांव मेरे भये अवै, तुम तट आय पहूंचो जवै॥
आज धन्य मेरे कर भये, स्वामी तुम पद परशन लये।
आज हि मुख पवित्र मुझ भयो, रसना धन्य नाम जिन लयो॥
आज हि मेरो सब दुख गयो, आज हि मो कलंक क्षय भयो।
मेरे पाप गये सब आज. आज हि सुधरो मेरो काज॥
अति ही मुदित भयो मम हियो, परणवित्र नमस्कार जब कियो।
धन्य आप देवनके देव, श्रीपालको निजपद देव॥

इसप्रकार स्तुति करके फिर सामायिक, वन्दन, आलोचन, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्गादि षट् आवश्यक कर स्वाध्याय करने लगे। और वे द्वारपाल जो वहां पहरेपर थे, ऐसे विचित्र शक्तिधर पुरुषको देखकर आश्चर्यवंत हो, कितनेक तो वहां ही रहे, और कितनेक राजाके पास गये। और संपूर्ण वृत्तांत राजासे कह सुनाया, कि

महाराज! एक बहुरूपवान, गुणनिधान, संपूर्ण लक्षणोंका धारी महापुरुष जिनालयके द्वारपर आया, और द्वार बन्द होनेका कारण पूछा और " ॐ नमः सिद्धम् " इस प्रकार उच्चारणकर निज करकमलोंसे सहज हीमें किवाड़ खोल दिये। इसलिये हम लोग आपकी आज्ञानुसार यह शुभ समाचार कहने आये हैं।

राजा यह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, और समाचार देनेवालोंको बहुत कुछ पारितोषिक दिया। पश्चात बड़े उत्साह व गाजेवाजे सहित सहस्रकूट चैत्यालय पहुंचा। प्रथम ही श्री जिनको नमस्कार कर स्तुति करने लगा—

ॐ नमो तुम जिनवर देव, भव भव मिले तुम्हारी सेव।
तुम जिन सर्व दुःख परहर्न, श्रीलंकृत तुम भविजन शर्न॥
तुम विन जीव फिरे संसार, जोगी संकट सहे अपार।
तुम विन करम न छोड़े संग, तुम विन उपजे मन भ्रम भंग॥
तुम विन भव आतापहि सहे, तुम विन जन्म जरा मृतु दहे।
तुम विन कोऊ न लेय उवार, तुम विन कर्म मिटे न लगार॥
तुम बिन दुरिय दुःख को हरे, तुम बिन कौन परम सुख करे।
तुम विन को काटे यमफंद, तुम बिन को पुजवे आनन्द॥
तुम विन उपजै कुमति कुभाव, तुम बिन कोई न और सहाव।
तुम बिन हितु न दूजा कोय, तुम विन शुभ गति कबहुं न होय॥
तुम विन मैं पापी जग भ्रम्यो, तुम बिन कालवाद सब गयो।
तुम विन मैं दुःख पायो घनो, वेदन शूल कहाँ लग भनो॥

तुम अबतक जिन लखो न कोय, दीनी आयु व्यर्थ सब खोय।
तातैं अर्ज करूँ सुनि लेव, कर्म अनादि काट मम देव॥
सेवककी ओर तनिक निहार, जन्म मरण दुःख कीजे क्षार॥

राजा इस प्रकार प्रभुकी वंदना करनेके पश्चात् श्रीपालके निकट आया, और यथायोग्य सत्कारके पश्चात् कुशल क्षेम और आगमनका कारण पूछने लगाः—

हे कुमार! आपका देश कौन है? किस कारण आपका यहां शुभागमन हुआ है? इत्यादिक प्रश्न जब राजाने किये तब श्रीपाल मनमें विचार करने लगे, कि यदि मैं अपने मुँहसे अपना वृत्तांत कहूँगा, तो राजाको खातिरी (निश्चय) होना कठिन है, क्योंकि इस समय अपने कथनकी साक्षी करनेवाला कोई नहीं है, और विना साक्षी सच भी झूठ हो जासकता है। इसलिये मैं राजाको किस प्रकार उत्तर दूँ ताकि इनको विश्वास हो।

पुरुषको चाहिये कि जो कुछ भी कहे; उसके पहिले उसकी सत्यताकी सिद्धिके लिए साक्षी ढूँढ ले अथवा चुप हो रहे। इस प्रकार वे शोच ही रहे थे कि पूर्व पुण्यके योगसे दो अवधिज्ञानी मुनिराज विहार करते हुए कहींसे वहां आ गये। सो ये दोनों उन मुनिको देखकर परम आनन्दित हो उठ खड़े हुए, और बड़ी विनयसे स्तुति करने लगे—

अहहा! धन्य भाग्य हम सार, भयो दिगम्बर गुरू निहार।
धनि तुम धर्म धुरंधर धीर, सहत बीसदो परिषह धीर॥

धन्य मोहतम हरन दिनन्द, भव्य कुमुद विकसावन चन्द।
कर्म बली जगमें परधान, ताह हतनको आप कृपाण॥
सुर हू सकहि न तुम गुण गाय, तो हमसे किम वरणे जाँय।
हे! प्रभु हमपर होहु दयाल, धर्मबोध दीजिये कृपाल॥

इस प्रकार गुरुकी स्तुति करके वे दोनों निज२ स्थानपर बैठे। श्री गुरुने उनको 'धर्मवृद्धि' देकर इस तरह उपदेश दिया–

"ए जिज्ञासुओ! सर्व धर्म और सुखका मूल सम्यक्त्व है। इसके बिना कुल क्रिया कर्म जप तप संयम सब ही निर्मूल हैं। इस लिये सबसे पहिले जीवोंको यह सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहिये। वह सम्यक्त्व दो प्रकार हैं–एक निश्चय और दूसरा व्यवहार। निज स्वरूपानुभव स्वरूप निश्चय सम्यक्त्व है, और तत्त्वनिश्चय सम्यक्त्वके लिये साधनरूप प्रधान कारण है। इसलिये कारणमें कार्यका उपचार होनेसे उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

तथा इसीप्रकार तत्वज्ञानके साधनभूत सच्चे देव, गुरु और शास्त्र हैं। इसलिये इनके श्रद्धानको भी व्यवहार सम्यक्त कहते हैं। कारणसे कार्य होता है, इसलिये कारणकी उत्तमतापर ही कार्यकी उत्तमता समझनी चाहिये। तात्पर्य सर्व दोषोंसे रहित ही (वीतराग) लोकालोकका ज्ञाता सर्वज्ञ और सर्व जीवोंका हित करनेवाला (हितोपदेशी) ऐसा तो देव अर्हंत है। अथवा समस्त कर्म रहित सिद्ध परमेष्ठी देव कहाते हैं। तथा ऐसे ही देवके द्वारा हुआ अनेकांत स्वरूप धर्म तथा द्वादशांगरूप शास्त्र तथा परम जितेन्द्रिय अट्ठाईस मूलगुण और ८४००००० उत्तर गुणोंके धारी आचार्य,

उपाध्याय और सर्वसाधु गुरु इन तीनोंका भी सम्यक् श्रद्धान करना चाहिये।

स्वप्नमें भी इनके सिवाय अन्य भेषी कुलिंगी देव, गुरु व जैनाभास मत तथा जैनेतर मत स्वरूप धर्मको कदापि अंगीकार नहीं करना चाहिये। ये ही पंचपरमेष्ठी (अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु) भव्य जीवोंको भवसागरसे पार करनेमें समर्थ कारण स्वरूप होते हैं। इसलिये हे वत्स ! तुम मन, वचन, कायसे इन हीका आराधन करो, जिससे उभय लोकमें सुख पाओ। ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन पूर्वक सप्त व्यसनोंका त्याग करो तथा पंच अणुव्रत और सप्त शीलका पालन करो।

हे वत्स हो ! इन सब व्रतोंको धारण करनेका मुख्य तात्पर्य विषय और कषायोंको कम करना अथवा सर्वथा अभाव करना है। क्योंकि आत्माके अहित करनेवाले विषय कषाय ही हैं " आतमके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय। " सो जो भव्य जीव इन मूल बातोंपर दृष्टि रखकर व्रताचरण करते हैं, उन्हींका व्रत करना सफल है, क्योंकि जो जड़को काटकर वृक्ष व फलोंकी रक्षा करना चाहता है वह मूर्ख है। 'मूलो नास्ति कुत: शाखा।' यथार्थमें मोहसे उत्पन्न ये राग द्वेषादि कषाय ही आत्माके परम शत्रु हैं, इन्हींके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव और बन्ध होता है।

जैसे२ जीव कर्म करता है वैसी ही शुभाशुभरूप होकर पुद्गलकी कर्मवर्गणाएँ आत्माकी ओर आती हैं जिससे तीव्र व मन्द कषाय भावोंके अनुसार तीव्र व मंदरूप स्थिति व अनुभागको लिये

हुवे कर्मोंका बन्ध होता है। इसी प्रकार यह जीव अनादिकालसे कर्म बंध करता हुआ, संसारमें जन्ममरणादि अनेक दुःखोंको भोगता है। यह संसारी मोही जीव पुद्गलकर्मोंके वश होजानेके कारण शुद्ध आत्माके स्वरूपको भूला हुआ चतुर्गतिमें ८४०००००० योनियोंमें १९९॥ कोटि कुलरूप स्वांग धरकर विषयवासनाओंमें ही सुख मान रहा है। इसलिये धर्मके स्वरूपको जानकर श्रद्धापूर्वक जो पुरुष विषय और कषायोंके दमन करनेवाले दो प्रकार (सागार और अनगार) धर्मको धारण करते हैं वे स्वर्गादिके सुखोंको भोगकर अनुक्रमसे सच्चे (मोक्षके) सुखको प्राप्त होते हैं। परन्तु जो लोग धर्मका स्वरूप समझे विना केवल बाह्य चारित्रमें ही रंजित होजाते हैं वे संसारके पात्र ही बने रहते हैं। उनकी यह सब क्रिया कायक्लेश मात्र ही रहती है। इसीसे जिनदेवने प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्रको सम्यक्चारित्र कहा है। इसलिये यथाशक्ति चारित्र भी धारण करना चाहिये।

गुरुका यह उपदेश उन दोनोंको अमृतके समान हितकारी प्रतीत हुआ। सो उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। पश्चात् राजा कनककेतुने विनयपूर्वक पूछा—"हे प्रभो! यह पुरुष कौन है? और किस कारण यहां आया है?" तब श्रीगुरुने कहा—

यह अंगदेश चंपापुर नगरके राजा अरिदमन तथा उसकी रानी कुंदप्रभाका पुत्र श्रीपाल है। जब इसका पिता कालवश होगया, तब यह राजा हुआ परन्तु इसको पूर्वसंचित अशुभ कर्मोंके योगसे सातसौ सखों सहित कोढ़ रोग होगया, जिसके प्रजाको भी दुर्गंधिसे

बहुत पीड़ा होने लगी। सो जब प्रजाकी पीड़ाका समाचार इसके कान तक पहुंचा, तब इस दयालु प्रजावत्सल धीरवीरने अपने काका वीरदमनको राज्य देकर सब सखों समेत वनका मार्ग लिया, और फिरते२ उज्जैनी नगरी मालवदेशमें आया। और वहां नगरके बाहिर उद्यानमें डेरा किया। सो वहांके राजा पहुपालने इसके पूर्व पुण्यके उदयसे इससे संतुष्ट हो, अपनी पुत्री मैनासुंदरीके भाग्यकी परीक्षा करनेके लिये वह गुण-रूपवती, सुशील कन्या इससे व्याह दी। वह कन्या सच्ची सती और धर्मात्मा थी, इसलिए उस विदुषी कन्याने अपने पिताके द्वारा पसंद किये हुवे इस कोढ़ी वरको सहर्ष स्वीकार कर लिया और अपने शुद्ध चित्तसे पतिसेवा तथा उपचार कर स्व-धर्मका पालन किया तथा अष्टाह्निका (सिद्धचक्र) व्रत भी किया कि जिसके प्रभावसे इसको शीघ्र आराम हो गया। अर्थात् हे भव्य! वह नित्य **श्रीजिनदेव**की पूजनाभिषेक करके गंधोदक लाती, और सातसौ वीरों सहित इसपर छिड़कती थी, और निरंतर सिद्धचक्रका आराधन करती हुई, शीलव्रतकी भावना भाती थी, जिससे इसका कोढ़ थोड़े ही दिनमें चला गया। और इसका शरीर जैसा तुम देख रहे हो सुंदर स्वरूपवान् होगया।

पश्चात् कुछ दिनोंके पीछे इसे विचार हुआ कि मैं राज्य-जँवाई कहाता हूँ, और मेरे पिता, कुल व देशका कोई नाम तक भी नहीं लेता है, यह बड़ी लज्जाकी बात है। इसलिये पिछली रात्रिको घरसे निकलकर फिरते २ एक बनमें आया। वहांपर एक विद्या-धरको विद्या साधते और सिद्ध न होते देखकर इसने उसे सिद्ध

करके सौंप दी, जिससे उसने प्रसन्न होकर दो अन्य विद्याएँ इसे भेंट कीं।

फिर वहांसे आगे चलकर यह वत्स नगरमें आया । सो वहां-पर धवलसेठके पांचसौ जहाज समुद्रमें अटक रहे थे, उनको ढकेलकर चलाया । तब उसने अपने लाभका दशमां भाग इसे देना स्वीकार-कर अपने साथ ही इसे ले लिया । पश्चात् रास्तेमें आते हुए डांकु-ओंने जहाज घेर लिये, और सेठको बांधकर लेचले। तब इस वीरने निज भुजबलसे उन सबको बांधकर सेठको छुड़ा लिया, और फिर उन सब डांकुओंको छोड़कर उनका बहुत सन्मान किया, जिससे उन्होंने प्रसन्न होकर इसे अमूल्य रत्नोंसे भरे हुए सात जहाज भेंट किये । इसप्रकार वहांसे यह महापुरुष उस धवलसेठके साथ चलकर यहां आया है, और जिनदर्शनके निमित्त ये वज्रमय कपाट उघाड़े हैं।

इसप्रकार श्रीपालका चरित्र सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मुनिवरोंको नमस्कारकर श्रीपालको साथ ले अपने महलको आया, और शुभ घड़ी मुहूर्त विचारकर अपनी पुत्री रयनमंजूषाका व्याह इनके साथ कर दिया । इसप्रकार श्रीपाल रयनमंजूषाको व्याहकर वहां सुखसे काल व्यतीत करने लगे, और धवलसेठ भी यथायोग्य वस्तु बेचने और खरीदनेरूप अपना व्यापार करने लगा ।

श्रीपालजीकी विदा।

इसप्रकार सुखपूर्वक समय व्यतीत होते हुए कुछ भी मालूम नहीं होता था। सो इसप्रकार जब बहुत समय बीत गया, और धवलसेठ भी अपना व्यापार कार्य कर चुके, तब एक दिन श्रीपालजीसे सलाहकर राजाके पास गए, और विनती करके बोले–'हे **नरनायक**! प्रजावत्सल स्वामिन्! हमको आपके प्रसादसे बहुत आनन्द रहा, और बहुत सुख भोगा। अब आपकी आज्ञा हो तो हम लोग देशान्तरको प्रस्थान करें।'

राजाको यद्यपि ये वियोगसूचक वचन अच्छे नहीं लगे, क्योंकि संसारमें ऐसा कौन कठोरचित्त है, जो अपने स्वजनोंको अलग करना चाहे, परंतु यह सोचकर कि यदि हठकर रक्खेंगे तो कदाचित् इनको दुःख होगा और परदेशीकी प्रीति भी तो क्षणिक ही होती है इसलिये जैसी इनकी इच्छा हो वैसा ही करना उचित है। इससे वे उदास होकर बोले कि–"आप लोगोंकी जैसी इच्छा हो और जिस तरह आपको हर्ष हो, सो ही हमको स्वीकार है।" ठीक है, सज्जन पुरुषोंकी यही रीति होती है कि वे परके दुःखमें दुःखी और परके सुखमें सुखी होते हैं अर्थात् वे किसीकी उचित कामनाका विघात नहीं करते। फिर तो ये राजाके स्वजन ही थे इसलिये राजाने इनका वचन स्वीकार करके जानेके लिये आज्ञा प्रदान की और बहुत धन, धान्य, दासी, दास, हिरण्य, सुवर्ण आदि अमूल्य रत्न भेंट देकर निज पुत्री रयनमंजूषाको भी साथमें विदा कर दिया।

चलते समय राजा बहुत दूर तक पहुँचानेको गये, और निज पुत्रीको इस प्रकार शिक्षा देने लगे "ए पुत्री ! तुम अपने कुलके आचारको नहीं छोड़ना कि जिससे मेरी हांसी हो। तुमसे जो बड़े हों उनको भूल करके भी कषाय युक्त होकर सन्मुख उत्तर नहीं देना, और सदा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करना। छोटोंपर करुणा व प्रेम भाव रखना, दीनोंपर दया करना. स्वप्नमें भी किसीसे वैर विरोध नहीं करना। तुम अपनेसे बड़े पुरुषोंको मुझ (पिता) समान, समवयस्कको भाईके समान और छोटेको पुत्रवत् समझना। मन, वचन, कायसे पतिकी सेवा करना, और उससे कभी भी विमुख नहीं होना। कैसा भी समय क्यों न आवे; परन्तु मिथ्यादेव, गुरु और धर्मको सेवन नहीं करना, निरंतर पंचपरमेष्ठीका आराधन किया करना। सच्चे देव गुरु धर्मको कभी नहीं भूलना। और हे पुत्री ! नरनारियोंका जो प्रधान भूषण जो शीलव्रत है सो मन, वचन, कायसे भलेप्रकार पालन करना।"

इस प्रकार पुत्रीको शिक्षा देकर राजा श्रीपालके निकट आये और मधुर शब्दोंमें कहने लगे–"हे कुमार ! मुझसे आपकी कुछ भी सेवा सुश्रूषा नहीं होसकी सो क्षमा कीजिये और यह दासी आपको दी है सो इससे भलेप्रकार सेवा कराइये। मैं आपको कुछ भी देनेको समर्थ नहीं हूँ। केवल यह गुण, बुद्धिहीन, एक कुरूप, कन्यारूपी लघु भेंट दी है। यही मेरी दीनताकी निशानी है। इसके सिवाय मैं आपका किसी प्रकार भी सत्कार नहीं कर सका हूं सो क्षमा प्रदान कीजिए।

तब श्रीपालजी बोले—" हे राजन्! आपने जो स्त्रीरत्न प्रदान किया है वही सब कुछ है। इससे और अधिक सम्पत्ति व सन्मान संसारमें हो ही क्या सक्ता है? मुझे तो आपके प्रसादसे अर्थ और काम दानोंकी प्राप्ति हुई है, इसलिये आपका मुझपर बहुत उपकार है। मैं आपकी बड़ाई कहांतक करूं?" ऐसे परस्पर सुश्रूषाके वचन कहे। पश्चात् राजा बोले—हे कुमार! यद्यपि जी नहीं चाहता है कि आपको मैं यहांसे विदा होते हुए देखूं, परन्तु रोकना भी अनुचित समझता हूं क्योंकि इससे कदाचित् आपके चित्तको संक्लेशता उत्पन्न हो और प्रस्थानके समय अपशुकन तथा यात्रामें विघ्न समझा जाय, इसलिये मैं आपसे केवल यह वचन कहना चाहता हूं कि:—

साठ पाव सौ आगरे, सेर जास चालीस।
ता बिच मुझको राखियो, यह चाहत बखशीस॥

अर्थात्—मुझे 'मन' में रखिए, भूलिये नहीं। तथा:—

चक्रवर्तके तट रहे, चार अक्षरके माह।
पहिलो अक्षर छोड़कर, सो दीजो मुह आह॥

अर्थात्—'दर्शन' भी देते रहिए। और:—

मुझ अवगुण लखियो नहीं, लखियो निजकुल रीति।
ऐसी सदा निवाहियो, मासा घटे न प्रीति॥

अर्थात्—मेरे गुण अवगुणोंको कुछ भी न चितारकर केवल अपने कुलकी रीतिको ही देखिये, और ऐसा निर्वाह कीजिये जिससे किंचित् मात्र भी प्रीति कम न होने पावे। तब श्रीपालजीने कहा—

कहन सुननकी बात नहिं, लिखी पढ़ी नहिं जात।
अपने मन सम जानियो, हमरे मनकी बात॥

अर्थात्—हे राजन्! जितना प्रेम आपका मुझपर रहेगा, मेरी ओरसे भी उससे कम कभी नहीं हो सकता। देखिये:—

सिन्धुपार अण्डा धरै, भ्रमै दिशान्तर जाय।
टटीहरी पक्षी कबहुं, अण्डा नहीं भुलाय॥

अर्थात्-टटीहरी पक्षी समुद्रके किनारे अंडे रखकर दिशांतरमें चले जाते हैं, परन्तु अपना अंडा नहीं भूलते हैं। उसी प्रकार मैं आपको भूल नहीं सकता। क्योंकि:—

यद्यपि चन्द्र आकाशमें, रहै पद्मिनी ताल।
तौ भी इतनी दूरसे, विकसावत रख ख्याल॥

अर्थात्-दूर चले जानेसे भी सज्जनोंकी प्रीति कम नहीं हो सकती है। जैसे चन्द्रमा आकाशमें रहते हुए भी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करता रहता है। और—

दुर्जन सेवा कीजिये, रखिये अपने पास।
तोहू होत न रंच सुख, ज्यों जल कमल निवास॥

अर्थात्—दुर्जनकी नित्य सेवा भी कीजिये और सदा पास रखिये तो भी प्रीति नहीं होती। जैसे जलमें रहकर भी कमल उससे नहीं मिलता है। इसलिये हे राजन्!:—

हम पक्षी तुम कमल दल, सदा रहो भरपूर।
मुझको कबहु न भूलियो, क्या नीरे क्या दूर॥ इत्यादि।

इस प्रकार श्वसुर जंवाईका परस्पर प्रेमालाप हुवा और पश्चात् श्रीपालजीने रयनमंजूषाको साथ लेकर हंसद्वीपसे प्रस्थान किया।

समुद्र-पतन।

श्रीपाल रयनमंजूषाको लेकर जब धवलसेठके साथ जल यात्राको निकले, तब हंसद्वीपके लोगोंको इनके वियोगसे बहुत दुःख हुआ; परन्तु वे विचारे कर ही क्या सकते थे ?

परदेशीकी प्रीति त्यों, ज्यों बालूकी भीत।
ये नहिं टिके बहुत दिवस, निश्चय समझो मीत॥

श्रीपालको श्वसुरके छोड़नेका तथा रयनमंजूषाको भी माता-पिताको छोड़नेका उतना ही रंज हुआ जितना कि उनको अपनी पुत्री और जंवाईके छोड़नेमें हुआ था; परन्तु ज्यों ज्यों दूर निकलते गये, और दिन भी अधिकर होते गए, त्यों त्यों परस्परकी याद भूलनेसे दुःख भी कम होता गया। ठीक है:—

नयन उघारैं सब लखै, नयन झपें कछु नांहि।
नयन बिछोहो होत ही, सुध बुध कछु न रहाहिं॥

वे दम्पति सुखपूर्वक काल व्यतीत करते और सर्व संघके मनोंको रंजायमान करते हुए चले जा रहे थे कि एक दिन विनोदार्थ श्रीपालजीने रयनमंजूषासे कहा—हे प्रिये! देखो, तुम्हारे पिताने बिना विचारे और विना कुछ पूछे, अर्थात् मेरा कुल आदि जाने विना ही मुझ परदेशीके साथ तुम्हारा व्याह कर दिया, सो यह बात उचित नहीं की।

रयनमंजूषा पतिके ये वचन सुनकर एकदम सहम गई, मानों

पद्मिनी चंद्रके अस्त होते ही मुरझा गई हो। वह नीची दृष्टिकर बड़े विचारमें पड़ गई कि दैव ! यह क्या चरित्र है ? यथार्थमें क्या यह बात ऐसी ही है ? कुछ समझमें नहीं आता। जो यह बात सत्य है तो पिताने बड़ी भूल की। चाहे जो हो, कुलीन कन्या अकुलीनका प्रसंग कभी नहीं कर सकती है। क्योंकि कहा है—

पहुप गुच्छ शिरपर रहे, या सूखे वन मांह।
तैसे कुलवंतन सुता, अकुली घर नहिं जांह॥

दैव ! तेरी गति विचित्र है। तू क्या२ खेल दिखाता है। इत्यादि विचारोंमें मग्न होगई और मुंहसे कुछ भी शब्द न निकला। तब श्रीपालने अपनी प्रियाको इस तरह चिंतित देखकर कहा—

"प्रिये ! संदेह छोड़ो। मैंने यह वचन केवल तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ही कहे थे। सुनो, मेरा चरित्र इस प्रकार है। ऐसा कहकर आद्योपांत कुल चरित्र कह सुनाया। तब रयनमंजूषाको सुनकर सन्तोष हुआ। और उन दोनोंका प्रेम पहिलेसे भी अधिक बढ़ गया।। जहाजोंके सभी स्त्री पुरुषोंमें इन दोनोंके पुण्यकी महिमा ही गाई जाती थी।

ये दोनों सबको दर्शनीय हो रहे थे, परन्तु दिनके पीछे रात्रि और रात्रिके पीछे दिन होता है। ठीक इसीप्रकार शुभाशुभ कर्मोंका चक्र भी चलता रहता है। कर्मको उन दोनोंका आनंद-वैभव अच्छा नहीं लगा। और उसने बीचहीमें बाधा डाल दी, अर्थात् वह कृतघ्नी धवलसेठ जो इनको धर्मसुत बनाकर और अपने लाभका दशवां भाग देनेका वादा करके साथ लाया था, सो रयनमंजूषाके अनुपम रूप और

सौंदर्यको देखकर उसपर मोहित होगया, और निरंतर इसी चिंतामें उसका शरीर क्षीण होने लगा।

एक दिन वह दुष्टमति उसे देखकर मूर्छित हो गिर पड़ा, जिससे सब जहाजोंमें कोलाहल मच गया! तथा श्रीपालजी भी शीघ्र ही वहां आये। उन्होंने सेठको तुरन्त गोदमें उठा लिया। शीतोपचारकर जैसे तैसे मुर्छा दूर की, तोभी उसे अत्यन्त वेदनासे व्याकुल पाया। तब श्रीपालने मधुर शब्दोंसे पूछा—" हे तात! आपको क्या वेदना है? कृपाकर कहो। तब उस दुष्टने बात बनाकर कहा—हे धीर पुरुष! मुझे वायुका रोग है। सो कभी २ वह उठकर मुझे पीड़ा देता है। और कोई विशेष कारण नहीं है। साधारण औषधोपचारसे ठीक हो जायगा। तब श्रीपाल उसे धैर्य देकर और अंग—रक्षकोंको ताकीद करके अपने मुकामपर चले गये। पश्चात् मंत्रियोंने पूछा:—

हे सेठ! कृपाकर कहो कि यह रोग कैसे मिटे, और क्या उपाय किया जाय? तब सेठ निर्लज्ज होकर बोला:—मंत्रियो! मुझे और कोई रोग नहीं है। केवल कामविरहकी पीड़ा है, सो यदि मेरे मनको चुरानेवाली वह कोमलांगी मृगनयनी रयनमंजूषा नहीं मिलेगी, तो मेरा जीना कष्टसाध्य होगा।

मंत्रियोंको सेठके ऐसे घृणित शब्द सुनकर बहुत दुःख हुआ। वे विचारने लगे कि सेठकी बुद्धि नष्ट होगई है। इस कुबुद्धिका फल इसको और समस्त संघको क्षयकारी प्रतीत होता है। यह सोचकर उन्होंने नानाप्रकारकी युक्तियों द्वारा सेठको समझाया।

परन्तु उस दुष्टने एक भी न मानी। वह निरंतर वही शब्द कहता गया। निदान लाचार होकर मंत्रियोंने कहा कि सेठ! यदि आप अपना हठ न छोड़ेंगे, और इस घृणित कार्यका उद्यम करेंगे तो स्मरण रखिये, परिणाम अच्छा न होगा।

क्योंकि रावण जैसा त्रिखण्डी, प्रतिनारायण और कीचक आदिकी कथाएं शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं। परस्त्री सर्पिणीसे भी अधिक विषैली होती है। देखो इसका हठ छोड़ो! हम लोग आज्ञाकारी हैं, जो आज्ञा होगी सो करेंगे, परन्तु स्वामीकी हानि और लाभकी सूचना कर देना यह हमारा धर्म है। आप हम लोगोंकी बात पीछे याद करेंगे। इत्यादि बहुत कुछ समझाया, परन्तु जब देखा कि वह मानता ही नहीं है तब वे लाचार होकर बोले—अदृष्ट प्रबल है।

सेठजी! इसका केवल एक ही उपाय है कि मरजियाको बुलाकर साध लिया जाय, कि जिससे वह एकाएक कोलाहल मचा दे कि "आगे न मालूम कोई जानवर है, या चोर है, या कुछ ऐसा ही दैवी चरित्र है, दौड़ो, उठो, सावधान होओ।" सो इस अवाजको सुनकर जब श्रीपाल मस्तूलपर चढ़कर देखने लगे, तब मस्तूल काट दिया जाय। इस तरह वे समुद्रमें गिर जावेंगे और आपका मनवांछित कार्य सिद्ध होजायगा। अन्यथा उसके रहते उसकी प्रियाका पाना मानों अग्निमेंसे वर्फ निकालना है।

मंत्रियोंका यह विचार उस पापीको अच्छा मालूम हुआ। और इसलिए उसने उसी समय मरजियाको बुलाकर बहुत प्रकार

प्रलोभन देकर साध लिया। ठीक है, पुरुष स्वार्थवश आनेवाली आपत्तियोंका विचार नहीं करते। निदान एक दिन अवसर पाकर मरजियाने एकाएक चिल्लाना आरम्भ किया:–वीरो! सावधान होओ। साम्हने भयके चिह्न दिखाई दे रहे हैं। न मालूम कोई बड़ा जल-जंतु है, या चोरदल है, अथवा ऐसा ही और कोई दैवी चरित्र है, तूफान है, या भंवर है, कुछ समझमें नहीं आता।

इसप्रकार उसके चिल्लानेसे कोलाहल मच गया। सब लोग जहां तहां क्या है? क्या है? करके चिल्लाने और पूछने लगे। इतनेहीमें श्रीपालजीको खबर लगी, सो वे तुरन्त ही उठ खड़े हुए और कहने लगे–"अलग होओ! यह, क्या है? क्या है? कहनेका समय नहीं है। चलकर देखना और उसका उपाय करना चाहिये। ऐसा कहकर वे आगे बढ़कर शीघ्र ही मस्तूलपर जा खड़े हुए और वहीं सावधानीसे चारों ओर देखने लगे, परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। इतनेमें नीचेसे दुष्टोंने मस्तूल काट दिया, जिससे वे बातकी बातमें समुद्रमें जा पड़े, और लहरोंमें ऊंचे नीचे होने लगे। यहां जहाजोंमें कोलाहल मच गया, कि मस्तूल टूट जानेसे श्रीपालकुमार समुद्रमें गिर पड़े हैं। और न जाने कहां रह गए! उनका पता नहीं लगता। जीवित हैं या मर गये? इसप्रकार सबने शोक मनाया। और धवलसेठने भी बनावटी शोक करना आरम्भ कर दिया।

वह कहने लगा–"हाय कोटीभट्ट श्रीपाल! तुम कहां चले गये? तुम्हारे विना यह यात्रा कैसे सफल होगी? हाय! इन भारी जहाजोंको निज भुजबलसे चलानेवाले, लक्ष चोरोंको बांधकर मुझे

उनके बंधनसे छुड़ानेवाले, हाय! कहां चले गये? हे कुमार! इस अल्प वयमें असीम पराक्रम दिखाकर क्यों चले गये? तुम विना, विपत्तिमें कौन रक्षा करेगा? हा दैव! तूने हमको अनमोल रत्न दिखाकर क्यों छीन लिया? इत्यादि ऊपरी मनसे बनावटी रोना रोने लगा। अन्तरङ्गमें तो वह हर्षके मारे फूलकर कुप्पा होरहा था परन्तु संघमें और बहुतोंको तो सचमुच ही बहुत दुःख हुआ। सो ठीक है। कहा भी है—

"जिसका घी गिर जाय, सो ही लूखा खाय।"

सो औरोंको सच्चा दुःख हो या झूठा, परन्तु धवलसेठको बनावटी शोक था; परन्तु औरोंका सच्चा था क्योंकि उनका तो श्रीपालसे विगाड़ ही क्या था, वह तो धवल जैसे कृष्णहृदय स्वार्थियोंका कांटा ही थे सो निकल गये। अस्तु।

किसीको कुछ भी हो, परन्तु स्त्रियोंको तो शरण—आधार पतिके बिना संसार अंधकारमय ही हो जाता है। पतिके विना सुंदर सुकोमल सेज भी विषम कंटक समान चुभती है। सुन्दर२ वस्त्र और आभूषण कठिन बंधनोंसे भी अधिक दुःख देनेवाले प्रतीत होते हैं। संगीत आदि मधुर स्वर सिंहकी भयानक गर्जनासे भी भयानक मालूम होते हैं। षट्रसपूरित सुगंधित मिष्ट भोजन हलाहल विष तुल्य मालूम पड़ता है। यथार्थमें पतिविहीन स्त्रियोंका जीवन पृथ्वीपर अर्धदग्ध जेवरीके समान है। हाय! जिस समय उस सुकुमार अबला रयनमंजूषाने यह सुना, कि स्वामी समुद्रमें गिर गये हैं, उसी समय वह वेसुध हो मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी।

मालूम होता था कि कदाचित् उसके प्राणपखेरू ही इस विनाशीक शरीररूपी घोंसलेसे विदा लेकर सदाके लिये चले गये हैं; परन्तु नहीं, अभी आयुकर्म निःशेष नहीं हुआ था! और कर्मको कुछ अपना और खेल भी दिखाना था इसीसे वह जीवित रह गई।

सखीजनोंने शीतोपचारकर मूर्छा दूर की; तो सचेत होते ही स्वामिन्! इस अबलाको छोड़कर तुम कहां चले गये? तुम्हारे विना यह जीवनयात्रा कैसे पूरी होगी? हे नाथ! अब यह अबला आपके दर्शनकी प्यासी पपीहाकी नाईं व्याकुल हो रही है। हे कोटीभट्ट! हे कामदेव! हे कुलकमल दिवाकर! तुम्हारे विना मुझे अब एक एक पल भी चैन नहीं पड़ती है। हे जीवदया प्रतिपालक प्राणेश्वर! दासीपर दयादृष्टि करो। मेरा चित्त अधीर हो रहा है। हे नाथ! सिद्धचक्रका वर्णन कौन करेगा?

हा निर्दयी कर्म! तूने कुछ भी विचार न किया! मुझ निर-पराधिनीको क्यों ऐसा दुःसह दुःख दिया? हाय! यह आयु स्वामीकी गोदमें ही पूरी हो गई होती, तो ठीक था। अब यह संसार भयानक बन सरीखा दिखता है। हे त्रिलोकीनाथ! सर्वज्ञ प्रभो! हे वीत-राग स्वामिन्! मेरे पतिकी सहायता कीजिये। हे सिद्ध भगवान्! आपके आराधन मात्रसे वज्रमयी किवाड़ खुल गये थे, सो इस संकटमें भी स्वामीकी रक्षा कीजिये। स्वामीके निमित्त ये प्राण कुछ भी वस्तु नहीं हैं। हाय! मुझे नहीं मालूम कि मैंने ऐसे कौन कर्म किये थे कि जिससे स्वामीका वियोग हुआ? क्या मैंने पूर्व जन्ममें परपुरुषकी इच्छा की थी? या पति-आज्ञा भंग की थी?

या किसीका व्रत भंग करवाया था ? जिनधर्मकी निंदा की थी ? या गुरुकी अविनय की थी ? या किसीको पतिवियोग कराया था ? या हिंसामय धर्मका सेवन किया था ? या कुगुरु कुदेवकी भक्ति की थी ? या अपना व्रत भंग किया था ? या असत्य भाषण किया था ? या कन्दमूल आदि अभक्ष्य भक्षण किया था ? हाय ! कौनसा अशुभ उदय आया कि जिससे प्राणप्यारे पतिका वियोग हुआ ? हे स्वामिन् ! आओ, दासीकी खबर लो।

देखो, मैनासुंदरीसे आपका वादा था कि बारह वर्षमें आऊँगा, सो क्या भूल गये ? नाथ ! मुझपर नहीं तो उन्हींपर सही, दया करो ! क्या करूं; और किसतरह धैर्य धरूं ? अरे, कोई भी मेरे प्राणप्यारे भर्तारकी कुशल मुझे आकर सुनाओ ? हे समुद्र ! तू स्वामीके बदले मुझे ही लेकर यमपुर पहुंचा देता तो ठीक था ! स्वामीके विना मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं जीकर अब क्या करूँगी ? इच्छा होती है कि मैं गिरकर प्राण देदूं, परन्तु आत्मघात महापाप है। यदि मुझसे सेवामें कुछ कमी होगई थी, तो मुझे उसका दण्ड देते। अपने आपको क्यों दुःखसागरमें डुबोया ? अब बहुत देर हुई। प्रसन्न होओ और अबलाको जीवनदान दो, नहीं तो अब ये प्राण आपकी न्योछावर होते हैं ! अब हे प्रभो ! आपका ही शरण है, पार कीजिये।

इसप्रकार रयनमंजूषाने घोर विलाप किया। उसका शरीर कांतिहीन मुरझाये फूल सरीखा दिखने लगा, खानपान छूट गया, शृङ्गार भी स्वामीके साथ समुद्रमें डूब गया। इसप्रकार उस सतीको

दुःखसे विह्वल देखकर सब लोग यथायोग्य धैर्य बन्धाने लगे और पापी धवलसेठ भी बनावटी शोकाकुल होकर समझाने लगा।

हे सुन्दरी! अब शोक छोड़ो। होनी अमिट है। इसपर किसीका वश नहीं। संसारका सब स्वरूप ऐसा ही है। जो उपजता है वह नियमसे नाश होता है। अब व्यर्थ शोक करनेसे क्या होसकता है? अब यदि तुम भी उनके लिये मर जाओ तोभी वे तुम्हें नहीं मिल सकते हैं। सांझको अनेक दिशाओंसे पक्षी आकर एक स्थानमें ठहरते हैं और भोर होते ही अपनी२ अवधि पूरीकर अपनी२ दिशाको चले जाते हैं। इस पृथ्वीपर बड़े बड़े चक्रवर्ती नारायणादि होगये परन्तु कालने सबको अपना ग्रास बना लिया, कर्मवश विपत्ति सबके ऊपर आती है। कर्मवश रामचन्द्र लक्ष्मणका वनवास हुआ। कर्मवश सीताका पतिसे दो बार विछोह हुआ। कर्मवश भरत चक्रवर्तीका मान भंग हुआ। कर्मवश ही आदिनाथ तीर्थेश्वरको छःमासतक भोजनका अंतराय हुआ। तात्पर्य–कर्मने जगजीवको जीत लिया है. इसलिये शोक छोड़ो। हम लोगोंको भी असीम दुःख हुआ है, परन्तु किससे कहें और क्या करें? कुछ उपाय नहीं है।

इसप्रकार सबने समझाकर रयनमंजूषाको धैर्य दिया। तब वह भी संसारके स्वरूपका विचारकर किसी प्रकार धैर्य धारण कर सोचने लगी–यथार्थमें शोक करनेसे असाता वेदनी आदि अशुभ कर्मोंका बंध होता है। सो यदि इतने ही समयमें जितनेमें शोक कर रही हूं श्री पंचपरमेष्ठीका आराधन करूंगी, तो अशुभ कर्मकी निर्जरा होगी और यह भी आशा है कि उससे कदाचित् प्राणपतिका भी

मिलाप होजाय। क्योंकि सीताको इसी परमेष्ठी मंत्रकी आराधनासे पतिका मिलाप और अग्निका जल होगया था। अंजनाको इसी मंत्रके प्रभावसे उसके प्राणप्रिय पतिकी भेट हुई थी। और तो क्या पशु और पक्षियोंकी भी इसी मंत्रके प्रभावसे शुभ गति होगई है, सो मेरे भी इस अशुभ कर्मका अन्त इसीकी आराधनासे आवेगा। और कदाचित इसी मंत्रके आराधन करते हुए मरण भी होगया तो भी इस पर्यायसे छुटकारा मिलते ही सद्गति प्राप्त होजायगी।

वास्तवमें यह महामंत्र तीन लोकमें अपराजित है, अनादि-निधन है, मंगलरूप है, लोकमें उत्तम है और शरणाधार है। अब मुझे इसीका शरण लेना योग्य है। बस, वह सती इसी विचारमें मग्न होगई। अर्थात मनमें परमेष्ठी मंत्रका आराधन करने लगी। उसे खानपानकी भी सुध न रही। दो चार दिन योंही बीत गये। स्नान, विलेपन और वस्त्राभूषणका ध्यान ही किसे था? वह किसीसे बात भी नहीं करती थी, न किसीकी ओर देखती थी। नींद, भूख, प्यास तो उसके पास ही नहीं रहे थे। उसको मात्र पंचपरमेष्ठीका स्मरण और पतिका ध्यान था।

वह पतिव्रता उन जहाजोंमें इस प्रकार रहती थी, जैसे जलमें कमल भिन्न रहता है। वह परम वियोगिनी इसप्रकार काल व्यतीत करने लगी।
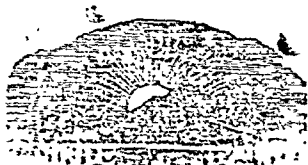
धवलसेठका रयनमंजूषाको बहकाना।

धवलसेठके ये दिन बड़ी कठिनतासे जारहे थे। इसलिये उसने शीघ्र ही एक दूतीको बुलाकर रयनमंजूषाको फुसलानेके लिये भेजा। सो ठीक है—

कामलुब्धे कुतो लज्जा, अर्थहीने कुतः क्रिया।
सुरापाने कुतः शौचं, मांसाहारे कुतो दया॥

अर्थात्—कामीको लज्जा कहां? और दरिद्रके क्रिया कहां? मद्यपानीके पवित्रता कहां! और मांसाहारीके दया कहां? सो पापिनी दूती व्यभिचारकी खानि लोभके वश होकर शीघ्र ही रयनमंजूषाके पास गई, और यहां वहांकी बातें बनाकर कहने लगी—

"हे पुत्री! धैर्य रक्खो। होना था सो हुआ, गई बातका विचार ही क्या करना है! हां यथार्थमें तेरे दुःखका ठिकाना नहीं है कि इस बालावस्थामें पतिवियोग होगया। अब इस बातकी चिंता कहांतक करेगी? अभी तो तेरी नवीन अवस्था है, इसमें कामका जीतना बड़ा कठिन है! सो बेटी! तू कैसे उस कामके बाणोंको सहेगी? जिस कामके वशीभूत होकर साधु और साध्वीने रुद्र व नारदकी उत्पत्ति की, जिस कामसे पीड़ित होकर रावणने सीता हरण की, जिस कामके वशमें और तो क्या देव भी हैं, उस कामका जीतना बहुत कठिन है। और ठीक भी है। कहा है:—

घास फूसको खात हैं, तिनहिं सतावे काम।
षट् रस भोजन जो करें, उनकी जाने राम॥

सो अब इस यौवनको पाकर व्यर्थ नहीं खो देना चाहिये, यौवन गया हुआ फिर नहीं मिलता है। केवल पछतावा ही हाथ रह जाता है। जिन्होंने तरुण अवस्था पाकर विषय नहीं सेया, उनका नरजन्म न पानेके बराबर है। तू अब श्रीपालका शोक छोड़कर इस परम ऐश्वर्यवान्, रूपवान और धनवान् सेठको ही अपना पति बना! मरेके पीछे कोई मर नहीं जाता। मर गया तो जीका कंटक छूटा। ऐसी लाजसे क्या लाभ, जो जीवनके आनन्दपर पानी डाले। और वह तो धवलसेठका नौकर था। सो जब मालिक ही मिल जाय, तो नौकरकी क्या चाह करना? मुझे तेरी दशा देखकर बहुत दुःख होता है। अब तू प्रसन्न हो, और सेठको स्वीकारकर तो मैं अभी जाकर उसको भी राजी किये आती हूँ।

मैं वृद्ध हुई हूं, इसलिये मुझे संसारका अनुभव भलेप्रकार हैं। तू अभी भोलीभाली नादान लड़की है, इसलिये मेरे वचन मानकर तू सुखसे काल बिता। इत्यादि अनेक प्रकारसे उस कुटिला दासीने समझाया परन्तु जैसे काले कम्बलपर और कोई रंग नहीं चढ़ता है, उसी प्रकार उस सतीके मनपर एक बात भी न जंची, अर्थात् उस पापिनी दूतीका जादू इस पर न चला।

वह कुलवंती सती उसके ऐसे निंद्य वचन सुनकर क्रोधसे कांपने लगी, और डपटकर बोली, चुप रह, दुष्टा पापिनी! तेरी जीभके सौ टुकड़े क्यों नहीं होजाते? धवलसेठ तो मेरे पतिका धर्म-पिता और मेरा श्वसुर (पिताके समान) है। क्या पुत्री और पिताका भी संयोग होता है?

पापिनी ! तूने जन्मांतरोंमें ऐसे २ नीच कर्म किये हैं जिससे गण्डा कुट्टिनी हुई है, और न मालूम अब तेरी और क्या गति हो? इस जन्ममें रयनमंजूषाका पति केवल श्रीपाल ही है। और पुरुष मात्र उसको पिता पुत्र व भाई तुल्य हैं। हट जा यहांसे, मुझे अपना मुंह मत दिखला नहीं तो इसका बदला पावेगी। इसप्रकार सुन्दरीने जब उसे घुड़काया, तब वह अपनासा मुंह लेकर कांपती हुई, पापी सेठके पास आई, और बोली—

"हे सेठ ! वह मेरे वशकी नहीं है। मुझे तो उसने बहुत अपमान करके निकाल दिया। जो थोड़ी देर और ठहरती, तो न मालूम यह मेरी क्या दशा करती ? इसलिये आप जानो व आपका काम जाने। मुझसे यह काम तो नहीं होसकता। दूती ऐसा उत्तर देकर चली गई।

धवलसेठ रयनमंजूषाके पास और देवसे दण्ड।

जब धवलसेठने दूतीको कृतकार्य हुआ न जाना, और उससे निराशाका उत्तर मिल गया, तब उस निर्लज्जने स्वयं रयनमंजूषाके पास उसे फुलसानेको जानेका विचार किया। ठीक है कहा है:—

यः कश्चिन्न मकरध्वजस्य वशगः किं ब्रूमहे तत्कृते।
नो लज्जा न च पौरुषं न च कुलं कुत्रास्ति पापन्विते॥
नो धैर्यं च पितुर्गुरोश्च महिमा कुत्रास्ति धर्मस्थितिः।
नो मित्रं न च बांधवा न च गृहं ध्वस्तः स्त्रियं पश्यति॥

अर्थात्—जो पुरुष कामके वश होरहा है, उसकी क्या कथा
है ? उसको न लज्जा, न बल, न कुल, न धैर्य, न धर्म, न गुरु,
न पिता, न मित्र, न भाई और न घर आदि कुछ भी नहीं दिखता।
केवल एक स्त्री ही स्त्री उसे दिखा करती है। और भी कहा है—

कामार्तानां कुतः पापं, पापार्थीनां कुतः सुखं।
नास्ति तत्प्राणिनां कर्म्म, दुःखदं यन्न कामजम्॥
यथा माता यथा पुत्री, यथा भगिनी च स्त्रियः।
कामार्थी च पुमानेता, एकरूपेण पश्यति॥

अर्थात्—कामी नरको क्या पाप नहीं लगता ? और पापीको
क्या सुख होसकता है ? नहीं, कभी नहीं। देखो, कामी नर माता
बहिन और पुत्री सबको स्त्रीके ही रूपमें देखता है। इसी प्रकार
शीघ्र ही वह पापी कामांध सेठ निर्लज्ज होकर उस सतीके निकट
पहुंचा। वह धर्मधुरन्धर अबला उसे सन्मुख आते देखकर अत्यंत
ही भय और लज्जासे मुरझाये फूलकी नांई होगई और अपना मुंह
वस्त्रसे ढांक लिया और मनमें सोचने लगी कि हा दैव ! तू
क्या २ खेल दिखाता है ? एक तो मेरे प्राणवल्लभ भर्तारका वियोग
हुआ। दूसरे यह दुर्बुद्धि मेरा शील भंग करनेके लिये सन्मुख आ
रहा है। हो न हो, मेरे पतिको इस पापीने ही समुद्रमें गिराया होगा।
हाय! एक दुःखका तो अंत नहीं हुआ, और दूसरा साम्हने
आया। क्या करूँ ? इस समय मेरा कौन सहायी होगा ? वह दासी
भी इसी पापीने भेजी होगी। इन जहाजोंमें मेरा कोई हितू नहीं
दिखता है। हे जिनदेव ! अब आपहीका शरण है। मुझे किसी

प्रकार पार उतारिये । लज्जा रखिये। तुम अशरणके शरणाधार और निरपेक्ष बन्धु हो ! इसप्रकार सोच रही थी, कि वह पापी निकट आकर बैठ गया और विषलपेटी छुरीके समान मीठे शब्दोंमें हँस हँसकर कहने लगा:—

'हे प्रिये रयनमंजूषे ! तुम भय मत करो। सुनो, मैं तुमसे श्रीपालकी बात कहता हूँ। वह दास था, उसको मैंने मोल लिया था। वह कुलहीन और वंशहीन था। बड़ा प्रपंची, झूठा और निर्दयीचित्त था। ऐसे पुरुषका मर जाना ही अच्छा है। तुम व्यर्थ उसके लिये इतना शोक कर रही हो। अब उसका डर भी नहीं रहा है। क्योंकि उसको गिरे हुए कई दिन भी होचुके हैं। सो जलचरोंने उसके मृतक शरीर तकको खा लिया होगा। इसलिये निःशंक होओ।

जब कांटा निकल जाता है, तब दुःख नहीं रहता। मुझे उसके साथ तुमको रहते हुए देखकर दुःख होता था कि क्या ऐसी कुलवान् और रूपवान् कन्या हीनकुलीको सेवे ! सो यह अन्याय विधि भी न देख सका, और उसने तुम्हारा पल्ला उससे छुड़ा दिया। अब तुम प्रसन्न होओ और मेरी ओर देखो। तुम मेरी स्त्री बनो और मैं तुम्हारा भर्तार बनूं। मैं तुमको अपनी सब स्त्रियोंमें मुख्य बनाऊँगा और स्वप्नमें भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कभी न होऊँगा। अब तुम डर मत करो। शीघ्र ही अपना हाथ मेरे गलेमें डालो, और अपने अमृतमई वचनोंसे मेरे कानों व मनको प्रफुल्लित करो। मेरा चित्त तुम्हारे विना व्याकुल होरहा है। हे कल्याणरूपिणी !

मृगनयनी ! कोमलांगी ! आओ और अपने कोमल स्पर्शसे मेरा शरीर पवित्र करो । देखो, ज्यों २ घड़ी जाती है, त्यों २ यौवनका आनन्द कम होता जाता है । कहा भी है कि:—

मनुज जनमको पाय कर, कियो न भोग विलास ।
व्यर्थ गमायो जन्म तिन, कर आगामी आश ॥
खबर नहीं है पलककी, कलकी जानैं कौन ।
जिन छोड़े सुख हालके, उनसे मूरख कौन ॥
सदा न फूलै केतकी, सदा न श्रावण होय ।
सदा न यौवन थिर रहै, सदा न जीवै कोय ॥

इसलिये हे प्यारी ! मुझ प्यासेकी प्यास बुझाओ । हम जानते हैं कि नारी बहुत कोमल होती हैं, पर तुमको क्यों दया नहीं आती ? क्यों तरसा रही हो ? तुम तो अतिचतुर व बुद्धिमती हो । तुम्हें इतना हठ करना उचित नहीं है । जो कुछ कहना हो दिल खोलकर कहो । मैं सब कुछ करसकता हूँ । मेरे पास द्रव्यका भी कुछ पार नहीं है। राजाओंके यहां जो सुख नहीं, सो मेरे यहां है, मेरे ऐश्वर्यके साम्हने इन्द्र भी तुच्छ है । किन्तु प्यारी ! केवल तुम्हारी प्रसन्नताकी कमी है सो र्ण कर दो, आओ, दोनों हृदयसे मिल लेवें ।" इत्यादि नानाप्रकारसे वह दुष्ट बकने लगा ।

परन्तु इस समय उस सतीका दु:ख वही जानती थी; क्योंकि शीलवती स्त्रियोंको शीलसे प्यारी वस्तु संसारमें कुछ भी नहीं है । वे शीलकी रक्षा करनेके लिये प्राणोंको भी न्योछावर कर देती हैं । इसीसे ये वचन उसको तीक्ष्ण बाणसे भी अधिक चुभ रहे थे । जब

उसने देखा कि यह पापी अपनी टेंटें लगाये ही जारहा है, और किंचित् भी लज्जा भय व संकोच नहीं करता, तब उसने नीति और धर्मसे संबोधन करनेका उद्यम किया। वह बोली—

"हे तात! आप मेरे स्वामीके पिता और मेरे श्वसुर हो, श्वसुर और पितामें कुछ अन्तर नहीं होता। मैं आपकी पुत्री हूं। चाहे अचल सुमेरु चल जाय, पर पिता पुत्रीपर कुदृष्टि नहीं कर सकता। प्रथम तो अशुद्ध कर्मने मेरे भर्तारका वियोग कराया और अब दूसरा उससे भी कई गुणा दारुण दुःख यह तुम देनेको उद्यत होरहे हो। यदि और कोई कहता तो मैं आपसे पुकार करती, परन्तु आपकी पुकार किससे कहूं! अपने कुल व धर्मको देखो? हाडमांस व मलमूत्रसे भरी घृणित देहको देखकर क्या प्रसन्न हो रहे हो? चमड़ेकी चादरसे ढकी हुई है जिसमें दशों द्वारोंसे दुर्गंध निकलती है ऐसे घृणित देहपर क्यों मुग्ध होरहे हो? इसके अतिरिक्त आपके यहां देवांगनाओंके सदृश स्त्रियां हैं। मैं तो उनके सन्मुख दासीवत् हूं। बड़े कुलवानोंका धर्म है कि अपने और परके शीलकी रक्षा करें। देखो, रावण व कीचक आदि परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे इस लोकमें अपयश लेकर मर और नर्क चले गये।

इसलिये पिताजी! आप अपने स्थानपर जाओ, और मुझ दीनको व्यर्थ ही सताकर दुःखी मत करो। मुझ असहायापर कृपा करो और यहांसे पधारो, परन्तु जैसे पित्तज्वरवालेको मिठाई भी कड़वी लगती है उसीतरह कामज्वरवालेको धर्मवचन कहां रुच सकते हैं?

वह दुष्ट बोला—" प्राणवल्लभे ! यह चतुराई रहने दो। ये सब बातें तो मैं जानता हूं। यह विचार बूढ़े पुरुषोंको कि जिनके शरीरमें पौरुष नहीं है, करना चाहिये। हम तुम दोनों तरुण हैं। भला, अग्निके पास घी विना पिघले कैसे रह सकता है ? सो इस व्यर्थकी बातोंसे क्या होगा ? आओ, मिल लो, नहीं तो ये प्राण तुम्हारे न्यौछावर है। अब भी जो कृपा न करोगी, तो मेरी हत्या तुम्हारे सिर होगी। अब तुम्हारी इच्छा ! मारो चाहे बचाओ।"

ऐसा कहकर उस पापीने अपना माथा भूमिपर रख दिया। जब उस सतीने देखा कि यह दुष्ट नीतिसे नहीं मानता। और अवश्य ही बलात्कार कर मेरा शरीर स्पर्श करेगा, तब उसने क्रोधसे भयंकर रूप धारणकर कहा—" रे दुष्ट पापी निर्लज्ज ! तेरी जीभ क्यों गल नहीं जाती ? अरे नीच दुर्बुद्धि निशाचर ! तुझे ऐसे घृणित शब्दोंको कहते शर्म नहीं आती है ? रे धीठ अधम क्रूर ! तू पशुसे भी महान् पशु है। तेरी क्या शक्ति है जो शीलधुरंधर स्त्रीका शील-हरण कर सके ?

यह पतिव्रता अपने प्राणोंको जाते हुए भी अपने शीलकी रक्षा करेगी। तू मेरे प्राण हरण तो कर सकता है, परन्तु मेरे शीलको नहीं बिगाड़ सकता। एक वे (श्रीपाल) ही इस भवमें मेरे स्वामी हैं। और उनकी अनुपस्थितिमें संयम ही मेरा रक्षक है। रे निर्लज्ज ! मेरे सामनेसे हट जा, नहीं तो अब तेरी भलाई नहीं है।"

वह पापी इससे भी नहीं डरा, और आगेको बढ़ा। यह देख उस सतीको चेत न रहा। कुछ देरतक वह काठ-पुतलीसी रह गई,

परन्तु थोड़ी देरमें पुनः जोरसे पुकारने लगी—हे दीनबंधो दया-सागर प्रभो ! मेरी रक्षा करो !

शिवनारी भर्तार प्रभु, तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाजको, सूझत और न ठौर॥
दीनबन्धु करुणानिधि, धन्य त्रिलोकीनाथ।
शरणागत पाले घने, कीन्ह अनाथ सनाथ॥
सीता, द्रोपति, अंजनी, मनोरमादिक नार।
विपति समय सुमरी तुमहिं, लीनो तिनहिं उवार।
अबकी बार पुकार मुझ, सुन लीजे महाराज।
ढील न कीजे क्षणक हू, राखो मेरी लाज॥
धवलसेठ हो कामवश, लाज दई छुटकाय।
आयो शील विगाड़ने, यहँ नहिं कोई सहाय॥
शील नसैं जो आज मुझ, तो मैं त्यागूँ प्राण।
यामें शंक न रंच हू, यही हमारी आन॥ इत्यादि।

इस प्रकार वह भगवानकी स्तुति करने लगी। अहा! जिसका कोई सहायक नहीं हो, और वह सच्चा शीलवान्, व्रतवान्, दृढ़चारित्री हो, तो उसकी रक्षा देव करते हैं। उस सतीके अखंड शीलको कौन खंडन कर सकता था ? एक धवला तो क्या कोट धवला भी उसका कुछ नहीं कर सकते थे। इसीलिये उसके दृढ़ शीलके प्रभावसे वहां तुरन्त ही जलदेव आकर उपस्थित हुआ और उसने धवलसेठकी मुश्कें बांध लीं तथा गदासे बहुत मार लगाई। बालु-रेत आंखोंमें भरके मुँह काला कर दिया, और मुँहमें मिट्टी भरदी, तथा और भी अनेक प्रकारसे निंद्य कुवचन कहे।

तात्पर्य—उसकी बड़ी दुर्दशा की, और बहुत दण्ड दिया। सब लोग एक दूसरेका मुँह ताकने लगे, परन्तु बतावें किससे? क्योंकि मार ही मार दिख रही थी, परन्तु मारनेवाला कोई नहीं दिखता था, अन्तमें मंत्री लोग यह सोचकर कि कदाकित् यह दैवी चरित्र है और इस सतीके धर्म्मके प्रभावसे हुआ है, अतएव रयनमंजूषाके पास आये, और हाथ जोड़कर खड़े हो प्रार्थना करने लगे:—

हे कल्याणरूपिणी पतिव्रते! धन्य है तेरे शीलके माहात्म्यको! हम लोग तेरे गुणोंकी महिमा कहनेको असमर्थ हैं। तू धर्मकी धोरी और सच्ची जिनशासनकी भक्त और व्रतोंमें लवलीन हैं। तेरे भावको इस दुष्टने न समझकर अपनी नीचता दिखाई। अब हे पुत्री! दया कर! इस समय केवल इस पापीका ही विनाश नहीं होता है, परन्तु हम सबका भी सत्यानाश हुआ जाता है। हम सब तेरे ही शरण हैं, हमको बचा। उन लोगोंके दीन वचनोंको सुनकर सतीको दया आगई। इसलिए वह क्रोधको छोड़ खड़ी होकर प्रभुकी स्तुति करने लगी—

"हे जिननाथ! धन्य हो! जो ऐसे कठिन समयमें आपके प्रभावसे इस अबलाकी धर्मरक्षा हुई। हे प्रभो! तुम्हारे प्रमादसे जिस किसीने मेरी सहायता की हो, वह इन्हें दया करके छोड़ दे। यह सुनकर उस जलदेवने उसे शिक्षा देकर छोड़ दिया, और रयनमंजूषाको धैर्य देकर बोला—"हे पुत्री! तू चिंता मत कर। थोड़े ही दिनमें तेरा पति तुझे मिलेगा, और वह राजाओंका राजा होगा। तेरा सन्मान भी बहुत बढ़ेगा। हम सब तेरे आसपास रहनेवाले सेवक हैं, तुझे कोई भी हाथ नहीं लगा सकता है।

इस तरह वह देव धवलसेठको उसके कुकर्मोंका दण्ड देकर और रयनमंजूषाको धैर्य बँधाकर अपने स्थानको गया और सतीने अपने पतिके मिलनेका समाचार सुनकर, व शीलरक्षा होनेसे प्रसन्न होकर प्रभुकी बड़ी स्तुति की, और अनशन, ऊनोदर आदि तप करके अपना काल व्यतीत करने लगी। वह पापी धवलसेठ लज्जित होकर उसके चरणोंमें मस्तक झुकाकर बोला—"हे पुत्री! अपराध क्षमा करो। मैं बड़ा अधम पापी हूं और तुम सच्ची शीलधुरन्धर हो। तब सतीने उसको भी क्षमा किया। सत्य है—

'उत्तमे क्षणिकः कोपो, मध्यमे प्रहरद्वयं।
अधमस्य अहोरात्रिं, नीचस्य मरणान्तकम्॥"

अर्थात्—उत्तम पुरुषोंका कोप क्षणमात्र (कार्य होनेतक), मध्यम पुरुषोंका दो प्रहर (भोजन करनेतक), जघन्य पुरुषोंका दिन रात और नीचोंका मरनेतक तथा जन्मान्तरों तक भी रहता है।

श्रीपालका गुणमालासे व्याह।

अब इस वृत्तांतको यहां छोड़कर श्रीपालका हाल कहते हैं। वह महामति जब समुद्रमें गिरा, तब ही उसने धवलसेठके मायाजालको समझ लिया; परन्तु उत्तम पुरुष विना साक्षी या निर्णय किये विना कभी किसीपर दोषारोपण नहीं करते, किंतु वे अपने ऊपर आये हुए उपसर्गको अपने पूर्वकृत् कर्मोंका फल समझकर ही समभावोंसे भोगनेका उद्यम करते हैं। इसीलिये उक्त धीर वीर पुरुषने अपने भावोंको किंचित्

भी मलीन नहीं होने दिया और पंच परमेष्ठी मंत्रका आराधन करके समुद्रसे तिरनेका उद्यम करने लगा। ठीक है—

"जो नर निज पुरुषार्थसे, निजकी करै सहाय।
दैव सहाय करै तिनहि, निश्चय जानो भाय॥"

दैवयोगसे उनको उस समुद्रकी लहरोंमें उछलता हुआ एक लकड़ीका तख्ता दृष्टिगत हुआ। सो उसे पकड़कर वे उसीके सहारे तिरने लगे। इनको दिनरात तो सब समान ही था। खानापीनाके ठिकाने केवल एक जिनेन्द्रका नाम ही शरण था और वही त्रैलोकी प्रभु उन्हें मार्ग बतानेवाला था। वह महाबली गंभीरता और साहसमें समुद्रसे किसी प्रकार भी कम न था। सो भला समुद्रकी इतनी शक्ति कहां जो उसे डुबा दे? दूसरी बात यह थी, कि पत्थर पानीपर नहीं तिर सकता है; परन्तु यदि काठकी नावमें मनों पत्थर भर दीजिये तो भी न डूबेगा।

इसी प्रकार वह एक तो चरमशरीरी था। दूसरे जिनधर्मरूपी नावपर सवार था, सो भला जो नाव इस अनादि अनन्त संसारसे पार उतार सकती है, उस नावसे इतनासा समुद्र तिरन तो कुछ भी कठिन न था। कहा है:—

जल थल बन रण शत्रु ढिग, गिरि गुह कन्दर माँहि।
चोर अग्नि वनचरोंसे, पुण्यहि लेय बचाहि॥

इस प्रकार महामंत्रके प्रभावसे वे तिरतेर कुंकुमद्वीपमें जाकर किनारे लगे। सो मार्गके खेदसे व्याकुल होकर निकट ही एक वृक्षके नीचे अचेत सो गये। इतनेहीमें वहांके राजाके अनुचर वहांपर आ

पहुँचे, और हर्षित हो परस्पर बतलाने लगे, कि धन्य है! राज-कन्याका भाग, कि जिसके प्रभावसे यह महापुरुष अपने भुजबलसे अथाह समुद्र पारकर यहां आ पहुंचा है। अब तो अपने हर्षका समय आ गया, यह शुभ समाचार राजाको देते ही वे हम सबको निहाल कर देवेंगे।

अहा! यह कैसा सुंदर पुरुष है? विधाताने अंग अंगकी रचना बड़ी सम्हाल करके की है। यह यक्ष है कि नागकुमार? या इन्द्र है, कि विद्याधर? या गंधर्व है? इत्यादि परस्पर सब बातें कर ही रहे थे कि श्रीपालजीकी नींद खुल गई। वे लाल नेत्रों सहित उठकर बैठ गये और पूछने लगे:—

"तुम लोग कौन हो? यहाँ क्यों आये? मुझसे डरते क्यों हो? और क्यों मेरी स्तुति कर रहे हो? सो निःशंक होकर कहो।" तब ये अनुचर बोले:—"महाराज! इस कुंकुमपुरका राजा सत्तराज और रानी वनमाला है। सो अपनी नीति और न्यायसे सम्पूर्ण प्रजाके प्रेमपात्र होरहे हैं। इस नगरमें कोई भी दिन दुःखी दिखाई नहीं देते। इस राजाके यहाँ एक रूप और गुणकी निधान, सकल कलाप्रवीण सुशीला गुणमाला नामकी कन्या है। किसी एक दिन राजाने कन्याको यौवनवती देखकर अवधिज्ञानी श्रीमुनिराजसे पूछा था कि—"हे देव! इस कन्याका वर कौन होगा? तब श्रीगुरुने अवधिज्ञानके बलसे जानकर यह कहा था कि जो पुरुष समुद्रको निज भुजाओंसे तिरकर यहाँ आवेगा, वही इसका वर होगा।" उसी दिनसे राजाने हम लोगोंको यहाँ पहरेपर रक्खा है। सो हमारे

पुण्योदयसे आज आप पधारे हो, आपको स्वागत है। हे प्रभो! चलिए और अपनी नियोगिनीको प्रसन्नतापूर्वक विवाहिये।

इस तरह अनुनय विनयकर कितने ही अनुचर श्रीपालजीको नगरकी ओर चलनेकी विनती करने लगे। और कितनोंने जाकर शीघ्र ही राजाको खबर दी! सो राजाने हर्षित होकर उन लोगोंको बहुत पारितोषक दिया पश्चात् राजा स्वयं उनकी अगवानीके लिए गए और उबटन, तेल, फुलेल आदि भेजकर श्रीपालजीको स्नान कराया, और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराकर बड़े उत्साह और गाजे बाजेसे मंगल गान पूर्वक उनको नगरमें लाये। घरोंघर मंगल गान होने लगा। तथा राजाने शुभ मुहूर्तमें निजपुत्री गुणमालाका पाणीग्रहण श्रीपालजीसे विनायकयंत्रकी पूजाभिषेक और हवन संस्कारादि कराकर अग्नि व पंचोंकी साक्षीपूर्वक करा दिया तथा बहुतसा दहेज नगर, ग्राम, हाथी, घोड़ेसवार, प्यादे और वस्त्राभूषण आदि देकर कहने लगे कि—

"हे कुमार! मैं आपकी कुछ भी सेवा करनेको समर्थ नहीं हूं। मैंने तो आपकी सेवाके लिये मात्र यह सेविका (पुत्रीको दिखाकर) दी है। सो धर्म, अर्थ और कामसे इसका पालन कीजिये तथा मुझसे जो कुछ सेवामें कमी हुई हो, सो क्षमा कीजिये और सदैव मुझपर कृपादृष्टि बनाये रखिये।"

तब श्रीपालने कहा:—हे राजन्! मैं तो एक विदेशी पानीमें बहता हुआ निराधार कर्मोदयसे यहां आया था! सो आपने दया करके जो यह कन्यारत्न मुझे दिया, और सब तरहसे मेरा उपकार

किया है सो मैं भूल नहीं सक्ता, सदैव आपकी सेवा करनेको तैयार हूं। राजा इस प्रकारका उत्तर सुनकर प्रसन्न हुआ। और श्रीपालजी भी वहां गुणमाला सहित सुखसे समय विताने लगे, परन्तु जब भी कभी रयनमंजुषा व मैनासुंदरीकी सुध आजाती तो वे चिंतितसे होजाते थे।

एक दिन श्रीपालजी इसी प्रकार विचारमें बैठे थे कि वहां गुणमाला आगई, और बातों ही बातोंमें वह पूछने लगी:—प्राणनाथ! आपका कुल वंश जाति आदिका वर्णन तथा यहांतक पहुँचनेका कारण भी सुनना चाहती हूँ. सो कृपाकर कहो।

यह बात सुनकर श्रीपालको हँसी आगई, और मनमें सोचने लगे कि अपना वृत्तांत इससे कहूं तो इसको उसका निश्चय कैसे होगा? ऐसा समझ चुप रहे। तब गुणमालाकी वह इच्छा और भी बढ़ गई। इसलिये वह और भी आग्रहपूर्वक पूछने लगी कि प्रभो! बताइये तो सही, राज्य आदि विभूति क्यों छोड़ी? और समुद्रमें कैसे गिरे? और मगरमच्छादि जीवोंसे बचकर किस प्रकार यहां तक आये? आपका चरित्र बहुत विचित्र मालूम होता है, इसीसे सुननेकी इच्छा बढ़ रही है।

तब श्रीपालजी बोले—प्रिये! पानी मेरा पिता, कीचड़ मेरी माता, बड़वानल मेरे भाई, और तरंगे मेरा परिवार है, सो उनको छोड़कर तुम्हारे पास तक मिलनेको चला आया हूं। बस, यही मेरा चरित्र है; क्योंकि इससे अधिक और जो मैं कहूं तो विना साक्षी यहां कौन मानेगा? यह सुनकर गुणमाला विस्मयमें पड़ गई और वह लज्जित हो नीचा शिर करके बैठ रही।

निज प्रियाकी यह विचित्र दशा देख श्रीपालजी बोले—'प्रिये! यदि तुमको मेरा विश्वास हो, और सुनना चाहती हो तो सुनो। "मैं अंगदेश चंपापुरके राजा अरिदमनका पुत्र हूं। पूर्वकर्मवश रोगाक्रांत होजानेसे अपने काकाको राज्यभार सौंपकर सातसौ सखों सहित उज्जैन आया। और वहांके राजा पहुपालकी कन्या मैनासुंदरीसे विवाह किया। उस सतीकी पवित्र सेवा और सिद्धचक्रव्रतके प्रभावसे मेरा और सब वीरोंका वह रोग मिटा।

वहांसे चलकर मैंने एक विद्याधरको उसकी विद्या साधकर देदी, और उससे जलतारिणी तथा शत्रुनिवारिणी दो विद्याएं भेटस्वरूप स्वीकारकर, मैं आगे चला। पश्चात् धवलसेठके पांचसौ जंहाज समुद्रमें अटक रहे थे सो चलाये, तब उसने लाभका दशांश भाग देनेका वचन देकर अपने साथ चलनेको आग्रह किया, सो उसके साथ चल दिया। रास्तेमें एक लक्ष चोरोंको वश किया, और उनने रत्न सहित सात जहाज भेट किये सो लेकर हंसद्वीपमें आया।

वहांपर जिनालयके वज्रमयी कपाट खोले और वहांके राजाकी कन्या रयनमंजूषाको परिणकर तथा उसे साथ ले आगे चला। सो कर्मयोगसे समुद्रमें गिर गया। तब पंचपरमेष्ठी मंत्रका आराधन करता हुआ जिनधर्मके प्रभावसे यहांतक आपहुंचा हूं। हे प्रिये! यही मेरी कथा है।" गुणमाला स्वामीके मुखसे उनका सब वृतांत जानकर बहुत प्रसन्न हुई। और ये (श्रीपालजी) अपनी चतुराईसे थोड़े ही समयमें राजा तथा प्रजा सबके प्रिय होगये।

कुंकुमद्वीपमें धवलसेठ।

कुछ दिनों बाद धवलसेठके जहाज भी चलते२ कुंकुमद्वीपमें आये। तब वह वहां डेराकर बहुत मनुष्यों सहित अमूल्य २ वस्तुएं लेकर राजाकी भेट करनेके लिये गया। और यथायोग्य सत्कार कर वे चीजें भेट कीं। इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी सेठका बहुत सन्मान किया। जब इत्र, पान, इलायची वगैरह होचुकीं तब सेठकी दृष्टि वहांपर बैठे हुए राजा श्रीपालपर पड़ी। सो देखते ही वह फूलकी नांई कुम्हला गया। दीर्घ निश्वास निकलने लगे और चिंतासे प्रस्वेद निकलने लगा। सुधि बुधि सब भूल गये। परन्तु यह भेद प्रगट न होजाय इसलिये शीघ्र ही अपने आपको सम्हालकर वह राजासे आज्ञा मांगकर अपने स्थानपर आया और तुरन्त ही मंत्रियोंको बुलाकर विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये? क्योंकि जिसने मेरे वहुत उपकार किये थे, और मैंने उसे ही समुद्रमें गिराया था सो वह तो अपने बाहुबलसे तिरकर यहां आपहुंचा है। और न मालूम कैसे, राजासे उसकी पहिचान भी होगई है।

तब एक वीर बोला—"हे सेठ! पुण्यसे क्या २ नहीं होता है? वह समुद्र भी तिर आया और राजाने उसे अपनी गुणमाला कन्या भी विवाह दी है" यह सुन सेठ और भी दुःखी होगया। ठीक है, दुष्ट मनुष्य किसीकी वढ़ती देखकर सहन नहीं कर सक्ते हैं। तिस पर यह तो श्रीपालजीका चोर है, सो चोर साहुसे सदा भयभीत होता ही है। वह मारे भय और चिंतासे विकल होगया और भोजन पान

सब भूल गया। मनमें सोचने लगा कि किसी तरह इसे राजाके यहांसे अलग करा सकूं, तो ही मैं बच सकूंगा, अन्यथा यह अब मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा, इसलिये मंत्रियो! अब कुछ ऐसा ही उपाय करना चाहिये। तब मंत्री बोले–

सेठ! चिंता छोड़ो और उसी दयालु कुमार श्रीपालकी शरण लो तो तुमको कुछ भी कष्ट न होगा, और यह भेद भी कोई नहीं जानेगा, परन्तु यह बात सेठको अच्छी न लगी। इतनेमें उनमेंसे एक दुष्ट मंत्री बोला–सेठ! सिंहके साम्हने क्या मृग जाकर रक्षा पा सक्ता है? जिसके साथ आपने भलाईके बदले बुराई की है, सो क्या वह अवसर मिलनेपर तुमको छोड़ेगा? नहीं, कभी नहीं छोड़ेगा!

इसलिये हमारी रायमें यह आता है कि भाँड़ोंको बुलाकर उन्हें कुछ द्रव्यका लालच देकर दर्बारमें भेजों, सो वे श्रीपालको देखकर बेटा, भाई, पति आदि कहकर लिपट जावें, जिससे राजा उसे भाँड़ोंका पुत्र जानकर प्राण दंड दे देगा और हम सब बच जावेंगे, कारण, यहां तो उसकी जान पहिचान कुछ है ही नहीं, इसलिये यह बात जम जावेगी।

सेठको यह विचार अच्छा मालूम हुआ इसलिए उसने इसे पसंद कर लिया और वह उस मंत्रीकी बुद्धिकी सराहनाकर कहने लगा–बस, ठीक है, अब इस काममें देरी मत करो कि जिससे शत्रुको अवसर मिल सके, नहीं तो वह न मालूम क्या कर डालेगा? यद्यपि साथवालों वा अन्य मंत्रियोंने सेठको बहुत समझाया कि

देखो, ऐसा काम न करो, नहीं तो पीछे बहुत पछताओगे, और जो उसका शरण ले लोगे तो तुम्हारा बाल भी बांका न होने पावेगा। परन्तु कहा है—"जाको विधि दारुण दुःख देई, ताकी मति पहिले हर लेई, अर्थात् बुद्धि कर्मानुसारिणी होती है इसलिये किसीके कहने वा समझानेसे क्या हो सकता था ?

ठीक है—आपत्ति आनेके पहिले ही बुद्धि नष्ट होजाती है, धर्मसे श्रद्धा छूट जाती है, कायरता बढ़ जाती है, सत्य वचन नहीं निकलता, विषय कषायें बढ़ जाती हैं। शील, संयम, दया, संतोष, विवेक, साहस आदि गुण और धन आदि सब चला जाता है। सो सेठकी भी यही दशा हुई। उसने किसीका कहना न माना, और भाँड़ोंको बुलाकर उन्हें बहुत द्रव्यका लालच देकर समझा दिया, कि तुम राजसभामें जाकर अपना खेल दिखाये बाद श्रीपालजीके गले लगकर मिलाप करने लगना, और अपना २ सम्बन्ध प्रकट करके अपने साथ घर चलनेका आग्रह करना, और राजाके कहने पूछनेपर इस प्रकार कहना—

महाराज ! हम जहाजमें बैठे आ रहे थे, सो तूफानसे जहाज फट गया, और हम लोग किसी तरह किनारे लगे, सो और सब तो मिल गये, परन्तु केवल दो लड़के रह गये थे। सो छोटा तो यह आज आपके दर्शनसे पाया और एक बेटा जो इससे दो वर्ष बड़ा था अब तक नहीं मिला है। ऐसा कहकर राजाको बहुत धन्यवाद देने लगना। इस प्रकार समझाकर उन भाँड़ोंको सेठने राज्य-सभामें भेज दिया।

भाँडोंका कपट।

पश्चात् वे सब भाँड़ मिलकर राज्यसभामें गये, और राजाको यथायोग्य प्रणामकर उन लोगोंने पहले तो अपनी नकलें, खेल इत्यादि करके राजासे बहुतसा पारितोषिक प्राप्त किया, पश्चात् चलते समय सब परस्पर मुहाँमुह देखकर अंगुलियोंसे श्रीपालकी ओर इशारा करके बतलाने लगे। यों ही ढँग बनाकर, थोड़ी देरमें ज्यों ही राजाकी ओरसे श्रीपाल लोगोंको बीड़ा देनेके लिये गये, और अपना हाथ उठाकर बीड़ा देने लगे, त्यों ही सबके सब भाँड़ अहहा धन्य भाग! बिछुड़े मिल गये कहकर उठ पड़े, और श्रीपालको चारों ओरसे घेर लिया। कोई बेटा, कोई पोता, कोई पड़पोता, कोई भतीजा, कोई पति इस तरह कहर कर कुशल पूछने लगे। और राजाको आशीर्वाद देकर बलैयाँ लेने लगे—कहने लगे—

अहा! आज बड़ा ही हर्षका समय मिला जो हमारा बेटा हाथ लगा। हे नरनाथ! तुम युग युगांतरों तक जीओ! धन्य हो महाराज, प्रजापालक हो! तुमने हम दीनोंको आज पुत्रदान दिया है। यह चमत्कार देखकर राजाने उन भाँड़ोंसे कहाः—

"तुम लोग सच्चा२ हाल मेरे सामने कहो! नहीं तो सबको एक साथ सूलीपर चढ़ा दूँगा। नीच निर्लज्जो! तुम लोगोंको कुछ भी ध्यान नहीं है कि किसी कुलीन पुरुषको अपना पुत्र कह रहे हो। तब वे भाँड हाथ जोड़ मस्तक झुका दीन होकर बोले—"महाराज दीनानाथ, अन्नदाता! यह लड़का हमारा ही है। मेरी

स्त्रीके दो बालक थे, सो एक तो यही है और दूसरेका पता नहीं है। हम सब लोग समुद्रमें एक नावमें बैठे आ रहे थे, सो तूफानसे जहाज फट गया, और हम लोग किसी प्रकार लकड़ीके पटियोंके सहारे कठिनतासे किनारे लगे। सो और सब तो मिल गये; परन्तु केवल एक लड़का नहीं मिला है। हे महाराज! धन्य हो! आज आपके दर्शनसे सम्पत्ति और संतति दोनों ही मिले।

भाँड़ोंके कथनको सुनकर राजाको बहुत पश्चात्ताप हुआ कि हाय! मैंने विना देखे और कुल जाति आदि विना ही पूछे कन्या विवाह दी। निस्सन्देह यह बड़ा पापी है, कि जिसने अपना कुल जाति आदि कुछ प्रगट नहीं किया और मुझे धोखा दिया। फिर सोचने लगा—नहीं, इस बातमें कुछ भेद अवश्य होना चाहिये; क्योंकि श्रीगुरुने जिस भाँति कहा था, उसी भाँति यह पुरुष प्राप्त हुआ है, और हीन पुरुष कैसे ऐसा अथाह समुद्रको पार कर सकता है? इसके सिवाय इन भांड़ोंका और इसका रंग, रूप और वर्ताव भी तो बिलकुल नहीं मिलता है। दैव जाने क्या भेद है? फिर कुछ सोचकर श्रीपालसे पूछने लगे—

"अहो परदेशी! तुम सत्य कहो कि तुम कौन हो? और भाँड़ोंसे तुम्हारा क्या संबन्ध है?" तब श्रीपालने सोचा—यहां मेरे वचनकी साक्षी क्या है। ये बहुत और मैं अकेला हूँ। विना साक्षी कहनेसे न कहना ही अच्छा है। यह सोचकर वह धीर वीर निर्भय होकर बोला—महाराज! इन लोगोंका ही कथन सत्य है। ये ही मेरे मां बाप और स्वजन सम्बन्धी हैं।

राजाको श्रीपालके इस कथनसे क्रोध उबल उठा, और उन्होंने तुरंत ही विना विचारे चांडालोंको बुलाकर इनको शूलीपर चढ़ा देनेकी आज्ञा दे दी। सत्य है, न जाने किस समय किसको कौन कर्म उदय आकर दुःख देता है, और क्या २ चमत्कार दिखाता है!

शूलीकी तैयारी।

राजाकी आज्ञासे चांडालोंने श्रीपालको बांध लिया, और शूली देनेके लिये ले चले। तब श्रीपाल सोचने लगे, कि यदि मैं चाहूं तो इन सबको क्षणभरमें संहार कर डालूं, परन्तु ऐसा करनेसे भी क्या सुकुलीन कहा जासकता हूं? कदापि नहीं, इसलिये अब उदयमें आये हुए कर्मोंको सहन करना ही उचित है, जिससे फिर आगेके लिये ये शेष न रहें। देखूं, अभी और क्या २ होता है? इस तरह सोचते हुए वे चांडालोंके साथ जारहे थे कि किसी राजमहलकी दासीने यह सब समाचार गुणमालासे जाकर कह दिया। सुनते ही वह मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ी। जब सखियोंने शीतोपचार करके मूर्छा दूर की, तो हे स्वामिन्! हे प्राणाधार! कहकर चिल्ला उठी, और दीर्घनिश्वास डालती हुई तुरन्त ही श्रीपालके निकट पहुंची, और उन्हें देखते ही पुनः मूर्छित होकर गिर पड़ी।

जब मूर्छा दुर हुई तो भयभीत मृगीकी नांई सजल नेत्रोंसे पतिकी ओर देखने लगी, और आतुर हो पूछने लगी—'स्वामिन्! मुझ दासीपर कृपाकर सत्य २ कहो कि आप कौन और किसके पुत्र हैं? और इन भांडोंने आपपर कैसे यह मिथ्यारोप किया है?

तब श्रीपाल बोले–" प्रिये ! मेरा पिता भांड और माता भांडिनी और सब कुटुम्बी भाण्ड हैं और इसकी हालमें साक्षी भी होचुकी है फिर इसमें संदेह ही क्या है ? तब गुणमाला बोली–हे नाथ ! यह समय हास्य करनेका नहीं है। कृपाकर यथार्थ कहिये। पहिले तो मुझसे कुछ और ही कहा था और मुझे उसीपर विश्वास है, परन्तु यह आज मैं कुछ विचित्र ही चमत्कार देख रही हूं। मुझे विश्वास नहीं होता कि आपके माता पिता भांड हों। आपका नाम, काम, रूप, शील, साहस, दया, क्षमा, सन्तोष, धीरज, बल और गंभीरता आदि गुण कुछ भी उनमें नहीं होसकते हैं। फिर आपको उनकी संतान कैसे कहा जाय ? आपको जिनदेवकी दुहाई है। सत्य२ कहिये, क्योंकि कहा है:—

> या पुंसि देदीप्यमानसुभगे ह्यारोग्यता जायते।
> गम्भीरं भयवर्जितं गुणनिधिं सन्तोषजातं चिरं॥
> विख्यातं शुभनामजातिमहिमा धैर्याद्युदारक्षमं।
> नेत्रानन्दकरो न भूमिपतिजो हीने कुले जायते॥

अर्थात्–सुन्दर, सुरूपवान् निरोगी, गम्भीर, भयरहित, गुणनिधि, सन्तोषी, शुभ नामवाला, कीर्तिवान् और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला ऐसा पुरुष हीनकुलमें कैसे जन्म लेसकता है ? कदापि नहीं ले सकता।

तब श्रीपालजी बोले–' प्रिये ! तुम चिंता मत करो और अपना शोक दूर करो। समुद्रके किनारे जो जहाज ठहरे हैं उनमें एक रयनमंजूषा नामकी सुंदरी है, जिसकी वार्ता पहिले तुमसे कह

चुका हूं, सो तुम उससे जाकर मेरा सब वृत्तांत पूछ लो। वह जानती है, वही तुमसे सब कहेगी। यह सुनते ही वह सती शीघ्र ही समुद्र किनारे गई। और रयनमंजूषा! रयनमंजूषा!! करके वहां पुकारने लगी। तब रयनमंजूषाने सुनकर विचारा—

यहां परदेशमें मुझसे कौन परिचित है? चलो, देखो तो सही कौन है? और क्यों बुला रही है? यह सोच वह जहाजके ऊपर आकर देखने लगी, तो साम्हने एक अति सुकुमार स्त्रीको रुदन करती हुई पाई, जो स्वामी स्वामीका ही भजन कर रही है, और जिसका शरीर धूलसे धूसरित होरहा है। तथा अस्तव्यस्त दशामें खड़ी है। उसे देख रयनमंजूषा करुणामय स्वरसे बोली— "हे बहिन! तू क्यों रोरही है, और क्यों इतनी अधीर होरही है? तू कौन है? और यहां कैसे आई?

गुणमालाको इसके वचनोंसे कुछ धैर्य हुआ। वह अपनेको सम्हाल करके बोली—"स्वामिनी! मेरे पिताने मुनिराजसे पूछा था कि जो पुरुष निज बाहुबलसे समुद्र तिरकर यहां आवे, वही तेरी कन्याका पति होगा, सो ऐसा ही हुआ कि यहां कुछ दिन हुए, एक पुरुष श्रीपाल नामका महातेजस्वी, रूपमें कामदेवके समान, वीर-वीर महाबली, निज बाहुबलसे समुद्र तिरकर आया और मेरे पिता (यहांके राजा) ने उसके साथ मेरा पाणिग्रहण भी करा दिया। इसप्रकार बहुत दिन हम दोनों आनन्दमें रहे परन्तु आज बहुतसे भांड राज्य-सभामें आये, और अपनी चतुराईसे राजाको प्रसन्नकर पारितोषिक प्राप्त किया। पश्चात् उन्होंने मेरे पतिको देखकर पकड़

लिया। और "पुत्र-पुत्र" कहकर चुंबन करने लगे, बलैयां लेने लगे, और राजासे कहने लगे कि यह तो हमारा पुत्र है।

तब राजाको बहुत दुःख हुआ, और उन्हें हीनकुली जानकर शूलीकी आज्ञा देदी है। इसलिये स्वामिनी! तुम इसके विषयमें जो कुछ जानती हो तो कृपाकर कहो, ताकि मेरे स्वामीकी प्राणरक्षा हो। मुझ अनाथको पति-भिक्षा देकर सनाथ करो!" तब रयनमंजूषा बोली-'हे बहिन! तू शोक मत कर। वह पुरुष चरमशरीरी महाबली है, उत्तम राजवंशीय है, मरनेवाला नहीं है! चल, मैं तेरे पिताके पास चलती हूं और वहीं सब वृत्तांत कहूंगी।

रयनमंजूषाका श्रीपालको छुड़ाना।

र यनमंजूषा श्रीपालका नाम सुनते ही हर्षसे रोमांचित हो गई, और लंबे २ पांव बढ़ाती हुई शीघ्र ही राजसभामें आकर पुकार करके प्रार्थना करने लगी कि-हे महाराज! प्रजापालक! दीनबन्धो! दयासागर! न्यायावतार! कृपा करके हम दीनोंकी प्रार्थनापर भी कुछ ध्यान दीजिये। अन्याय हुआ जारहा है। विना विचारे ही एक निर्दोष व्यक्तिकी हत्याकर हम दीन अवलाओंको आप अनाथ बना रहे हैं। राजाने उनकी पुकार सुनकर सामने बुलाया और पूछा—

हे सुंदरियो! तुम क्या कहना चाहती हो? तुमको निःकारण किसने सताया है? शीघ्र कहो। तब वे दोनों हाथजोड़ कर बोली—'महाराज! हमारे पति श्रीपालको निष्कारण शूली होरही है इसका न्याय होना चाहिये।'

राजाने कहा–" सुंदरियो ! वह राज्यवंशका अपराधी है। वह वंशहीन भाण्डोंका पुत्र होकरके भी यहां वंश छिपाकर रहा और मुझे धोखा दिया है, इसलिये उसे अवश्य ही शूली होगी।"

रयनमंजूषा बोली–" महाराज ! यह एक–अंगी न्याय है, एक ओरकी बात मिश्रीसे भी मीठी होती है, परन्तु प्रतिवादीके लिये तीक्ष्ण कटारी है, इसलिये पहिले विचार कीजिये। और फिर जो न्याय हो सो कीजिये। हम तो न्याय चाहती हैं। राजाने रयनमंजूषासे कहा–" अच्छा ! तुम इस विषयमें कुछ जानती हो तो कहो।"

तब रयनमंजूषाने कहा–हे नरनाथ ! यह अंगदेश चंपापुरीके राजा अरिदमनका पुत्र है। और उज्जैनके राजा पहुपालकी रूपवती व गुणवती कन्या मैनासुंदरीका पति है। यह वहांसे चलकर रास्तेमें बहुत जनोंको वश करता हुआ हंसद्वीप आया, और वहांके राजा कनककेतुकी पुत्री मुझ रयनमंजूषाका पाणिग्रहण किया। पश्चात् आगे चला, सो जहाजोंके स्वामी धवलसेठकी मुझपर कुदृष्टि हुई, जिससे उसने छलकर मेरे पतिको समुद्रमें गिरा दिया तथा मेरा शील भंग करनेका उद्यम किया, सो शील धर्मके प्रभावसे किसी जलदेवने आकर मेरा उपसर्ग दूर किया और सेठको बहुत दण्ड दिया। उस समय देवने मुझसे कहा था कि पुत्री ! तू चिंता मत कर, शीघ्र ही तेरा स्वामी तुझे मिलेगा, और वह बड़ा राजा होगा सो महाराज अबतक मेरे प्राण इसी आशापर ही टिक रहे हैं। अब आपके हाथ बात है, सो करुणाकर या तो हमको पतिकी रक्षा दीजिये या हमारा भी अंत निज नेत्रोंसे देखिए।

राजा रयनमंजूषासे यह वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने अविचारीपन पर पश्चात्ताप करता हुवा तुरंत ही श्रीपालके पास गया और हाथ जोड़कर विनती करने लगा—"हे कुमार! मेरी बहुत भूल हुई, सो मुझ पर क्षमा करो! मैं अधम हूँ, जो विना ही विचारे यह अनर्थ कार्य किया। अब मुझपर दया करके घर पधारो।"

तब श्रीपालने कहा—"महाराज! संसारमें यह कर्म ही जीवोंको अनादि कालसे कभी सुख और कभी दुःख दिया करता है। इसमें आपका कुछ दोष नहीं है। मेरे ही पूर्वोपार्जित पाप कर्मोंका अपराध है। जैसा किया वैसा पाया। अच्छा हुआ, जो वे कर्म छूट गये। मेरा इतना ही भार कम हुआ। मुझे तो कुछ भी इसका हर्ष विषाद नहीं है। जो हुआ सो ठीक ही हुआ। गई बातका पछतावा ही क्या? हां, इतनी बात अवश्य है कि आप जैसे समीचीन पुरुषोंको प्रत्येक कार्य सदैव विचारपूर्वक ही करना चाहिये।" कहा है, कि—

किं विद्याधरवादनादनिपुणोद्गारः कुतो धैर्यवान्।
किं योगीश्वरकाननं च कथितं ध्यानं धृतं केवलम्॥
किं राज्यं सुरनाथतुल्यभवतो भूमंडले विद्यते।
यच्चितं च विवेकहीनमनिशं दुःखं च पुंसोऽधिकम्॥

अर्थात्-विद्याधरकी गंधर्वादि विद्याएँ, योगीश्वरोंका वनमें अचल ध्यान और स्वर्ग समान समस्त पृथ्वीका राज्य भी विवेक विना निष्फल है। राजाने लज्जासे शिर नीचा करलिया और

श्रीपालको गजारूढ़ कर बड़े उत्साहसे राजमहलको लेआये। नगरमें घरोंघर मंगल नाद होने लगा और हर्ष मनाया जाने लगा। श्रीपाल जब महलमें आये, तो दोनों स्त्रियोंने प्रेमपूर्वक पतिकी वंदना की, और परस्पर कुशल पूछकर अपना २ सब वृत्तांत कहा तथा उनको सुनकर चित्तको शांत किया, और वे आनन्दसे समय बिताने लगे।

राजाने सेवकोंको भेजकर धवलसेठको पकड़ बुलाया, सो राज्यकीय नौकर उसे मारते पीटते तथा बड़ी दुर्दशा करते हुए राजसभा तक लाये। तब राजाने उस समय श्रीपालजीको भी बुलाया और कहा—"देखो, इस दुष्टने अपने महोपकारी आप जैसे धर्मात्मा नररत्नको निष्कारण बहुत सताया है इसलिये अब इसका शिरश्छेद करना चाहिये।" यह सुनकर और सेठकी दुर्दशा देखकर श्रीपालको दुःख हुआ। वे राजासे बोले—'महाराज! यह मेरा धर्मपिता है। कृपाकर इसे छोड़ दीजिये। इसने मेरे साथ जो भी अवगुण किये हैं वे मेरे लिये तो गुण स्वरूप ही हो गये हैं। मेरे तो इनके ही प्रसादसे आपके दर्शन हुए और अतुल सुख प्राप्त किया। यदि ये मुझे समुद्रमें न गिराते, तो मैं यहांतक न आता और न गुणमाला जैसी महिलाभूषणको विवाहता।

इस प्रकारसे राजाने श्रीपालके कहनेसे सेठ और उसके सब साथियोंको छोड़ दिया, तथा आदरपूर्वक पंचामृत भोजन कराकर बहुत सुश्रूषा की।

धवलसेठने श्रीपालजीकी यह उदारता, दयालुता तथा गंभी-

रता देखकर लज्जित हो नीचा शिर कर लिया, और श्रीपालकी बहुत स्तुति की। तथा मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा-हाय! मैंने इसको इतना कष्ट दिया, परन्तु इसने मुझपर भलाई ही की। हाय! मुझ पापीको अब कहां ठौर मिलेगा? इस प्रकार पछताकर ज्योंही उसने एक दीर्घ उच्छ्वास ली कि उसका हृदय फट गया, और तत्काल प्राणपखेरू उड़ गये। और वह मरकर पापके उदयसे नर्क चला गया। यहां श्रीपालको सेठके मरनेका बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सेठानीके पास जाकर बहुत बहुत शोक प्रदर्शित किया। पश्चात् उसे धैर्य देकर कहने लगा-

माताजी! होनी अमिट है, तुम दुःख मत करो, मैं तुम्हारा आज्ञाकारी पुत्र हूँ, जो आज्ञा हो सो ही करूँ। यहां रहो तो सेवा करूँ और देश व गृह पधारो तो पहुंचा दूँ। सब द्रव्य आपहीका है। शंका मत करो, मैं तुम्हारा पुत्र हूं। तब सेठानी बोली-"हे पुत्र! तुम अत्यन्त दयालु और विवेकी हो। जो होना था सो हुआ, अब आज्ञा दो तो मैं घर जाऊं। तब श्रीपालने उसकी इच्छा प्रमाण उसको यथायोग्य व्यवस्था करके विदा किया और आप वहां सुखसे दोनों स्त्रियों सहित रहने लगे।
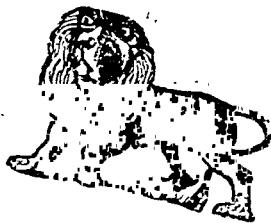
श्रीपालका चित्ररेखासे ब्याह।

एक दिन श्रीपालजी अपनी दोनों स्त्रियों सहित आनन्दमें मग्न हुए बैठे थे कि दरवानने आकर खबर दी कि महाराज! द्वारपर एक राजदूत आपको याद कर रहा है, आज्ञा हो तो बुलावें। श्रीपालजीने उसे आनेकी आज्ञा दी, तब वह दूत भीतर आया और नमस्कार कर विनयपूर्वक बोला—"हे महाराज! यहांसे थोड़ी दूर धन, कण, कंचनसे परिपूर्ण एक कुंडलपुर नामका बहुत बड़ा नगर है। वहांका राजा मकरकेतु अत्यन्त दयालु और प्रजापालक है कि जिसके राज्यमें कोई दीन दुःखी मिलते ही नहीं हैं। उस राजाके यहां कपूरतिलका नामकी रानीके गर्भसे उत्पन्न चित्ररेखा नामकी एक अत्यन्त ही रूपवती व शीलवती कन्या है। सो राजाने एक दिन कन्याको यौवनवती देखकर श्री मुनिसे पूछा था कि इस कन्याका वर कौन होगा?

तब श्री गुरुने उसका सम्बन्ध आपसे होना बताया है, इसलिये कृपाकर आप वहां पधारिये, और अपनी नियोगिनी कन्याको विवाहिये। मैं श्रीमानको लेनेके लिये ही आया हूं, यह संदेश सुनकर श्रीपालको बड़ा हर्ष हुआ और दूतको बहुतसा पारितोषिक दिया। पश्चात् आप अपनी दोनों स्त्रियोंसे बिदा होकर कुंडलपुर गये।

दूतने इनको नगर बहार ठहराकर राजाको समाचार दिया, सो राजा बड़ी सजधजके साथ इनकी अगवानीको आया, और आदरसे नगरमें ले गया। पश्चात् इनका कुल गोत्रादि पूछकर अपनी चित्ररेखा

नामकी सुन्दर गुणवती कन्याका विवाह शुभ मुहूर्तमें इनके साथ परमेष्ठीयंत्रकी पूजाविधि पुरस्सर अग्नि व पंचकी साक्षीसे कर दिया। और बहुत पुर पट्टन हाथी घोडे रथ प्यादे इत्यादि भेट दिये। सब नगरमें खूब आनंद मनाया गया। इसप्रकार श्रीपालजी चित्र-रेखासे व्याहकर आनंद सहित वहां रहने लगे।

श्रीपालका अनेक राजपुत्रियोंसे व्याह।
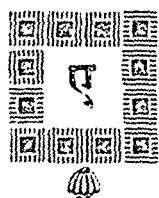
एक दिन श्रीपाल चित्ररेखा सहित मधुर भाषण करते हुए बैठे थे, कि कंचनपुरका राजदूत आया। और श्रीपालजीसे नमस्कार कर बोला—“हे स्वामिन्! सुनो! कंचनपुरके राजा वज्रसेन और उनकी रानी कंचनमाला है। जिसके गर्भसे सुशील, गन्धर्व यशोधर और विवेक ऐसे चार पुत्र बड़े गुणवान रूपवान और साहसी हुए हैं। तथा विलासमती आदि नवसौ पुत्रियां रूप लावण्यताकर पूर्ण हैं। सो एक दिन जब राजाने निमित्त ज्ञानीसे इनका सम्बन्ध पूछा तब उसने उनका विवाह आपके साथ होना बताया था। इसलिये आप कृपाकर शीघ्र ही पधारिये। यह सुन श्रीपाल प्रसन्न होकर श्वसुरकी आज्ञा ले कंचन-पुर गये और वहां उन नवसौ कन्याओंको विवाहकर आनंदसे रहने लगे। वहांपर कुछ दिन ही हुए थे कि कुंकुमपुरका एक दूत आया, और बोला—

“महाराज! हमारे यहांका राजा यशसेन महायशस्वी और पुण्यवान है। उसके गुणमाला आदि चौरासी स्त्रियां हैं और स्वर्ण-

बिम्ब आदि पांच पुत्र तथा शृंगारगौरी आदि सोलहसौ कन्याएं हैं उनमें आठ कन्याएं मुख्य हैं, जो समस्याएँ कहती हैं। इसलिये जो कोई उनकी समस्याओंकी पूर्ति करेगा सो ही उन सबको विवाहेगा। आजतक अनेकों राजपुत्र आये, परन्तु वे उनकी समस्याओंकी पूर्ति यथोचित् नहीं कर सके। इसलिये आप वहां पधारिये, यह कार्य कदाचित् आपसे हो सकेगा। यह सुन श्रीपालजी प्रसन्न हो, श्वसुरकी आज्ञा लेकर कुंकुमपुरमें पहुंचे, सो वहांके राजा यशसेनने इनका आदर सहित स्वागत किया और अच्छे स्थानमें डेरा कराया। सब नगरमें मंगलगान होने लगा और जब उन राजकन्याओंने यह समाचार पाया तो बड़े हर्ष सहित उत्तम उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर इनसे मिलने आईं। और इनका अनुपम रूप देखते ही मोहित होगईं।

श्रीपालने उनको आते देखकर यथायोग्य सन्मान सहित बैठनेकी आज्ञा दी और कहा—"हे सुंदरियो! आप अपनी २ समस्याएं कहिए।

तब प्रथम ही शृंगारगौरी बोली—

समस्या—'जहं साहस तहं सिद्धि' ॥ १ ॥

पूर्ति—अवसर कठिन विलोकके, यही राखिये बुद्धि।
कब हूं न साहस छोड़िये, जहं साहस तहं सिद्धि ॥ १ ॥

तब दूसरी सुवर्णगौरीने कहा—

समस्या—' गोपे खंतह सव्व ' ॥ २ ॥

पूर्ति—धम्म न विलसो धननि, कृपण है संचय दव्व।
जूवा रायपले वणो, गोपे खन्तह सव्व ॥ २ ॥

तब तीसरी पौलोमीदेवी बोली।

समस्या–'ते पंचायण सीह' ॥ ३ ॥

पूर्ति–शील विहूना जे त्रि नर, तिनकी मैली देह।
ते चारित्ता निर्मला, ते पंचायण सीह ॥ ३ ॥

तब चौथी सुहागगौरी बोली–

समस्या–'तासुकाचरा मींठ' ॥ ४ ॥

पूर्ति–रयनागर छोड़ो चवे, दादुर कुवे वईठ।
जिह श्रीफल नहीं चाखिया, तासुकाचरा मीठ ॥ ४ ॥

तब पाँचवीं सोमकला बोली–

समस्या "कास पिवाऊँ खीर" ॥ ५ ॥

पूर्ति–रावण विद्या साधियो, दश मुख एक शरीर।
माई संशय पड़ रही, कास पिवाऊँ खीर ॥ ५ ॥

तब छठवीं शशिरेखा बोली–

समस्या–"सो मैं कहूँ न दीठ" ॥ ६ ॥

पूर्ति–सातों सागर हूँ फिरो, जम्बूदीप पईठ।
शांत पराई जो करे. सो मैं कहूं न दीठ ॥ ६ ॥

तब सातवीं संपदादेवी बोली–

समस्या–"काई विठियो तेण" ॥ ७ ॥

पूर्ति–कुंती जाये पंच सुत, पांचो पंच सयेण।
गंधारी सौ जाइया, काई विठियो तेण ॥ ७ ॥

तब आठवीं पद्मावती बोली–

समस्या– "सो तसु काय करेय" ॥ ८ ॥

पूर्ति-सत्तर जासु च उगणी, परी पावली णेय।
अक्षर पास बइठड़ी, सो तसु काय करेय ॥ ८ ॥*

इस प्रकार जब आठों समस्याओंकी पूर्ति होचुकी, तब सब कुटुम्बको बड़ा आनन्द हुआ। और तुरन्त ही शुभ मुहूर्तमें राय यशसेनने अपनी सोलहसौ गुणवती कन्याएँ विधिपूर्वक श्रीपालजीको विवाह दीं। श्रीपालजी कुछ दिन तक विवाहके बाद वहां ही रहे, और सुखसे समय व्यतीत किया। पश्चात् एक दिन कुछ सोच विचारकर राजाके पास आकर आज्ञा ली, और सोलहसौ स्त्रियोंकी विदा कराकर वहां आये जहां नवसौ स्त्रियां थीं, और वहांके राजासे भी घर जानेकी आज्ञा मांगी।

तब राजाने कहा—"हे गुणधीर! आपके प्रसंगसे मुझे बड़ा आनन्द होता है, इसलिये कृपाकर कुछ दिन और भी इस स्थानको पवित्र करो"। तब श्रीपालने श्वसुरका कहना मानकर कुछ दिन और भी वहां निवास किया। पश्चात् वहांसे भी सब स्त्रियोंकी बिदा कराकर कंचनपुर आये, और वहांसे चित्ररेखाकी बिदा कराई, और पुंडरीकपुर आकर कोकन देशकी दो हजार कन्याएँ विवाहीं। फिर मेवाड़ (उदयपुर) की सौ कन्याएँ विवाहीं, फिर तैलंग देशकी एक हजार विवाहीं, पश्चात् कुंकुमद्वीपमें आये, और गुणमाला तथा रयनमंजूषासे मिलकर वहींपर कुछ समय तक विश्राम किया। सुखमें समय जाते मालूम नहीं पड़ता है, सो बहुतसी रानियों सहित क्रीडा करते हुए सुखसे काल व्यतीत करने लगे।

---

* उक्त समस्याएँ हमारी समझमें नहीं आईं इसलिये कवि परिमल्लकृत पद्य ग्रन्थके अनुसार जैसीकी तैसी ही यहां उद्धृत कर दी हैं।

श्रीपालका उज्जैन--प्रयाण ।

एक दिन राजा श्रीपाल रात्रिको सुखसे नींद ले रहे थे कि अचानक नींद खुल गई और मैनासुंदरीकी सुधमें वेसुध हो गये । वे सोचने लगे—" ओहो ! अब तो बारह वर्षमें थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं । सो यदि मैं अपने कहे हुए समयपर नहीं पहुँचूंगा, तो फिर वह सती स्त्री नहीं मिलेगी, इसलिये अब शीघ्र ही वहां चलना चाहिये, क्योंकि इतना जो ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हुआ है, यह सब उसी कारणसे हुआ है । सो मैं यहां सुख भोगूं और वह वहां मेरे विरहसे संतप्त रहे ! यह उचित नहीं है, इसी विचारमें रात्रि पूरी होगई ।

प्रातःकाल होते ही नित्यक्रियासे निवृत्त होकर वे राजाके पास गये और सब वृत्तांत कहकर घर जानेकी आज्ञा मांगी । तब राजा सोचने लगे कि जानेकी आज्ञा देते हुए तो मेरा जी दुखता है; परन्तु हठकर रखना भी अनुचित है। ऐसा विचारकर अपनी पुत्री समेत श्रीपालकी अन्य समस्त स्त्रियोंको बहुतसे वस्त्राभूषण पहिराकर उन्हें विदा करते समय इस प्रकार हित शिक्षा दी—

" हे पुत्रियो ! यह पुरुष बड़ा तेजस्वी, वीर, कोटीभट्ट है । तुम्हारे पूर्व पुण्यसे ही ऐसा पति मिला है। सो तुम मन, वचन, कायसे इनकी सेवा करना। सासु आदि गुरुजनोंकी आज्ञा पालन करना, परस्पर प्रीतिसे रहना, छोटों और दीन दुखियोंपर सदा करुणाभाव रखना ! कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका स्वप्नमें भी आराधन न करना। जिनदेव, जिनगुरु और जिनधर्मको कभी मत भूलना । इस

प्रकारसे दोनों कुलकी लाज रखना।" इत्यादि शिक्षा देकर विदा किया।

वहांसे चलते चलते वे सोरठ देशमें आये और वहांके राजाकी पांचसौ कन्याएं विवाहीं। वहांसे चलकर गुजरात देशमें आये और वहांके राजाकी भी पांचसौ कन्याएं विवाहीं। फिर महाराष्ट्र देशमें आये, और वहां चारसौ कन्याएं विवाहीं। फिर वैराट देशमें आकर दोसौ कन्याएं व्याहीं।

इस प्रकार श्रीपालजी बहुतसी रानियों और बड़ी सैन्या सहित उज्जैनके उद्यानमें आये, जहां इनका कटक नगरके चारों ओर ठहर गया। वहां घोड़ोंकी हींस, हाथियोंकी चिंघाड़, बैलोंकी डकार, ऊँटोंकी बलबलाहट, रथोंकी गड़गड़ाट, प्यादोंकी खटखटाक, बाजोंकी झनझनाट और भेरीकी भीमनाद आदिसे बड़ा घमसान कोलाहल होने लगा। जलचर भयके मारे जलमें छिप रहे और वनचर स्थान छोड़कर भाग गये। नभचर भी आकाशमें स्थानभ्रष्ट हुए इधर उधर शब्द करते डोलने लगे। नगरमें भी बड़ी हलचल मच गई। कायर पुरुषोंके हृदय कांपने लगे। वे सोचने लगे कि अवसर पाकर चुपकेसे हमलोग निकल चलें। ऐसी नामवरीमें क्या रखा है जो प्राण जाय? कहीं जंगलमें छिपछिपाकर दिन बिता देंगे। कृपण पुरुष धनको बांध बांध जमीनमें गाड़ने लगे। चोर लुटेरे लूटका अवसर देखने लगे, विषयी भावी विरहके दुःखका अनुभव करने लगे। शूरवीर अपने हथियार निकालकर मांजने लगे। वे सोचने लगे—हमारे आज राज्यके नमक खानेका बदला देनेका शुभ दिन आन पहुंचा है।

विद्वज्जन तो संसारके विषयकषायोंसे विरक्त हो द्वादशानुप्रेक्षाका

चिंतवन करने लगे। वे सोचने लगे—उपसर्ग दूर हो तो संयम लें और सदैवके लिये इस जंजालसे छूटें। बहुतसे लोग सचिन्त होकर राजाके पास दौड़े और पुकारने लगे—"हे महाराज! न जाने कहांका कौन राजा अपने नगरपर चढ़ आया है, सो रक्षा करो। राजा भी बड़े विचारमें पड़ गये और मंत्रियोंको बुलाकर सलाह करने लगे। मंत्री भी अपनी२ राय बताने लगे। इसी प्रकार सोचते२ संध्या होगई इसलिये राजा भी सेनाको तैयार रहनेकी आज्ञा देकर आप अंतःपुरको चले गये।

श्रीपालका कुटुम्ब-मिलाप।

जब रात्रि होगई, और सब लोग सोगये, तब श्रीपालजीने सोचा, कि मैंने १२ वर्षका वादा किया था, सो आज ही पूर्ण होता है। यदि मैं इसी समय मैनासुंदरीसे नहीं मिलता हूं तो वह भोर होते ही दीक्षा ले लेगी और फिर निकट आकर भी वियोगका दुःख सहना होगा। इसी विचारमें उसे क्षण२ भारी मालूम होने लगा। और इसलिये वह महाबली पिछली रात्रिको अकेला ही उठकर चला, सो शीघ्र ही माता कुंदप्रभाके महलके पास पहुंचा, और द्वारपर जाकर खड़ा होगया, तो क्या सुनता है कि प्राणप्यारी मैनासुन्दरी अपनी सासुके समीप बैठी हुई इस प्रकार कह रही है—

माताजी! आपके पुत्र तो अबतक नहीं आये, और १२ वर्ष पूर्ण होगये। इसलिये मैं अब प्रातःकाल ही श्री जिनेश्वरी दीक्षा

लूंगी। मुझे आज्ञा दीजिये। इतने दिन मेरे आशा ही आशामें बीत गये। अब व्यर्थ समय बिताना उचित नहीं है। न पतिका ही सम्मेलन हुआ और न संयम ही ग्रहण किया तो नरजन्म अकारथ ही गया समझो और उनका दिया हुआ वचन भी पूर्ण होगया है। कहा है—

"प्रसरी या संसारमें, आशा पास अपार।
बंधे प्राणी छूटे नहीं, दुःख पावें अधिकार॥

सो उनके आनेकी अब कुछ आशा नहीं दीखती है क्योंकि परदेशकी बात है। न जाने स्वामी राह भूल गये या किसी स्त्रीके वश होकर मेरी याद भूल गये अथवा अन्य ही कोई कारण हुआ, क्योंकि अबतक कुछ संदेशा भी तो नहीं मिला है, इसीसे और भी चित्त व्याकुल होरहा है। माताजी! अबतक आपकी जो सेवा बन सकी सो यदि उसमें मेरी भूल व अज्ञानतासे जो त्रुटि हुई हो सो क्षमा करो और दयाकर आज्ञा दो कि मैं शीघ्र ही सकल संयम धारण करूं। अब विलंब करनेसे मेरी आयुका अमूल्य समय व्यर्थ जाता दीखता है।

तब कुंदप्रभा बोली—"पुत्री! दोचार दिन तक और भी धैर्य रक्खो। यदि इतनेमें वह (मेरा पुत्र) न आवेगा, तो मैं और तू दोनों ही साथ २ दीक्षा ले लेवेंगे, परन्तु मुझे आशा ही नहीं किंतु पूर्ण विश्वास है कि वह धीर वीर अवश्य ही इतनेमें आवेगा। तब सुंदरी बोली—

"माताजी! यह तो सत्य है कि स्वामी अपने वचनके पक्के

हैं, परन्तु कर्म बड़ा बलवान् है। क्या जाने स्वामीको कौनसी पराधीनता आगई है इससे नहीं आये। विना संदेश मैं कैसे निश्चय करूं ? कि वे इतने दिनोंमें आही जावेंगे।"

तब माताने कहा—"हे पुत्री ! तू इतनी अधीर मत हो। निश्चय ही तेरा पति २—४ दिनमें आवेगा। सो यदि वह आया और सुना घर देखेगा, तो बहुत दुःखी होगा, इसलिये जैसे तुम इतने दिन रहीं हो, वैसे और भी २—४ दिन सही। फिर हम तुम दोनों ही दीक्षा लेंगे।" तब मैनासुन्दरी बोली—माताजी ! अब मोहवश समय विताना व्यर्थ है। आप भी मोहको छोड़कर चलो, और प्रभूके चरणकी सेवा करो। अब रहना उचित नहीं है। जो रहूंगी तो बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। माताजी ! आप तो उनकी जननी हो। सो पुत्रकी भूतिती देखोगी और मेरे जैसी तो उनके अनेकों दासियां होंगी। सो अब क्यों व्यर्थ ही अपमान सहनेके लिये रहूं और इसपर भी अभी उनके आनेकी कुछ खबर नहीं है तब क्यों अपना समय विताया जाय ?"

इस प्रकार सासु बहूकी बातें हो ही रही थीं, कि श्रीपालजी धीमे स्वरसे किवाड़ खटखटाकर बोले-माताजी ! किवाड़ खोलिये, आपका प्रियपुत्र श्रीपाल द्वार पर खड़ा है।

इस प्रकारकी आवाज सुनकर दोनों सासु बहू सहम गईं, उनका वियोगिक शोक हर्षमें परिणत होगया, उनके हर्ष रोमांच हो आए और इसलिए शीघ्रातिशीघ्र उन्होंने किवाड़ खोल दिए। किवाड़ खुलते ही वे भीतर गये और माताको प्रणाम किया। माताने हर्षित

श्रीपालका उज्जैनीके लिये प्रयाण । (देखो पृ० १५६)

" श्री जैन आत्मानंद सभा "ना बंधुकृत्यथी.

श्री महोदय प्रेस–भावनगर.

हो आशीर्वाद दिया—"हे पुत्र! तुम चिरंजीवी होकर प्राप्त की हुई लक्ष्मीको सुखपूर्वक भोगो और तुम्हारा यश सर्वत्र फैले।"

पश्चात् श्रीपालकी दृष्टि मैनासुंदरीकी ओर गई, तो देखा कि वह कोमलाङ्गी अत्यन्त क्षीणशरीरा हो रही है। तब उसके महलको गये। वहां पहुँचते ही मैनासुंदरी पांवपर गिर पड़ी। कुछ कालतक सुखमूर्छित होनेसे चुपकी हो रही, फिर नम्र शब्दोंमें चित्तके हर्षको प्रकाशित करने लगी—"अहा! आज मेरा धन्यभाग्य है, जो मैं स्वामीका दर्शन कर रही हूँ। हे प्राणवल्लभ! इस दासीपर आपकी असीम कृपा है, जो समय पर दर्शन दिये। धन्य हो! आप अपने वचनके निर्वाह करनेवाले हैं। मैं आपकी प्रशंसा करनेको असमर्थ हूँ।"

तब कोटीभट्टने अपनी प्रियाको कंठसे लगाकर उसे धैर्य दिया! पश्चात् परस्पर कुशल वृत्त पूछनेके, श्रीपालजी माता और मैनासुंदरीको अपने कटकमें ले गये, और वहां जाकर माताको उच्चासनपर बैठाकर निकट ही मैनासुंदरीको उन्हींके आसनके पास ही स्थान दिया पश्चात् रयनमंजूषा आदि समस्त स्त्रियोंको बुलाकर कहा—"यह उच्चासनपर विराजमान हमारी पूज्य माता और तुम्हारी पूज्य सासुजी हैं और उनके पास ही मेरी प्रथम-रानी पट्टरानी मैनासुंदरी हैं। इन्हींके प्रसादसे तुम सब आठ हजार रानियाँ और ये सब संपत्तियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं।

तब उन स्त्रियोंने स्वामीके मुखसे यह सम्बन्ध जानकर यथाक्रम सासु कुंदप्रभा और मैनासुंदरीको यथायोग्य नमस्कार करके बहुत विनय सत्कार किया। इस प्रकार परस्पर सम्मिलन हुआ पश्चात्

श्रीपालजीने माता और मैनासुंदरीको अपना सब कटक दिखाया।

माताकी आज्ञा लेकर मैनासुंदरीको आठ हजार रानियोंकी मुख्य पट्टरानीका पद प्रदान किया और बोले–'हे सुन्दरी! यह सब कुछ जो विभूति दीखती है सो तेरे ही प्रसादसे है। मैं तो वही विदेशी पुरुष हूं, जो विपत्तिका मारा यहां आया था।" तब मैना-सुंदरीने विनययुक्त हो नीचा मस्तक कर लिया और बोली–

'हे स्वामिन्! मैं आपकी चरणरजके समान हूं। मैंने अपने पूर्व पुण्यके योगसे ही आप जैसा भर्तार पाया है। आप तो कोटी-भट्ट, साहसी, धीरवीर, पराक्रमी और महाबली हो। लक्ष्मी तो आपकी दासी है। आपकी निर्मल कीर्ति दशों दिशाओंमें व्याप्त होरही है।"

इसतरह मैनासुन्दरीका पट्टाभिषेक होगया और वे रयनमंजुषा, गुणमाला, चित्ररेखादि समस्त आठ हजार रानियां मैनासुंदरीकी सेवा सुश्रूषा करने लगीं। पश्चात् एक समय मैनासुंदरीको अपने पिताके पूर्वकृत्यका स्मरण हो आया सो वह बदला लेनेके विचारसे पतिसे बोली–हे स्वामिन्! आप तो दिगंत–विजयी हो. इसलिये मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा मेरे पिताका युद्धमें मान भंग होवे और जब वे कांधेपर कुल्हाड़ी धरे हुए, कंबल ओढ़कर और लंगोटी लगाकर सन्मुख आवें तभी छोड़ना चाहिये।"

यह सुनकर कोटीभट्ट चुप होगये और कुछ सोच विचारकर बोले–'हे कान्ते! तुम्हारे पिताने मेरा बड़ा उपकार किया है, अर्थात् कोढ़ीको कन्या दी है। जिस समय मैं सर्व स्वजनोंसे वियोगी हुआ यत्र तत्र फिर रहा था तब उसने मेरी सहायता की थी सो ऐसे

उपकारीका अपकार करना, कृतघ्नता और घोर पाप है। अतः मुझसे यह कार्य होना कठिन है।" तब मैनासुंदरी बोली-

"हे स्वामिन्! मैं कुछ द्वेषरूपसे नहीं कहती हूँ, परन्तु यदि कुछ चमत्कार दिखाओगे तो उनकी जिनधर्मपर दृढ़ श्रद्धा होजावेगी, यही अभिप्राय है।"

श्रीपालका पहुपालसे मिलाप।

श्रीपाल प्रियाके ऐसे वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और तुरन्त ही एक दूतको बुलाकर उसे सब भेद समझाया, और राजा पहुपालके पास भेजा। सो दूत स्वामीकी आज्ञानुसार शीघ्र ही राजाकी ड्योढ़ीपर जापहुंचा, और दरवानके हाथ अपना संदेशा भेजा। राजाने उसे आनेकी आज्ञा दी, सो उस दूतने सन्मुख जाकर राजा पहुपालको यथायोग्य नमस्कार किया। राजाने कुशल पूछी, तब दूत बोला—

"महाराज! एक अत्यन्त बलवान पुरुष कोटीभट्ट अनेक देशोंको विजय करके और वहांके राजाओंको वश करता हुआ आज यहां आपहुँचा है, उसकी सैन्या नगरके चारों ओर पड़ रही है। उसके साम्हने किसीका गर्व नहीं रहा है। सो उसने आपको भी आज्ञा की है कि लँगोटी लगा, कम्बल ओढ़, माथेपर लकड़ीका भार और कांधे कुल्हाड़ी रखकर मिलो तो कुशल है, अन्यथा क्षणभरमें विध्वंस कर दूंगा। इसलिये हे राजन्! आप जो कुशल चाहते हो, तो इस प्रकारसे जाकर उससे मिलो, नहीं तो आप जानो। पानीमें रहकर मगरसे वैर करके काम नहीं चलेगा।"

राजा पहुपालको दूतके वचनोंसे क्रोध आया, और वे बोले—"इस दुष्टका मस्तक उतार लो, जो इस प्रकार अविनय कर रहा है।" तब नौकरोंने आकर दूतको तुरन्त ही पकड़ लिया और राजाकी आज्ञानुसार दण्ड देना चाहा, परन्तु मंत्रियोंने कहा—"महाराज! दूतको मारना अनुचित है, क्योंकि यह बेचारा कुछ अपनी ओरसे तो कहता ही नहीं है। इसके स्वामीने जैसा कहा होगा, वैसा ही तो कह रहा है, इसमें इसका कुछ अपराध नहीं है, इसलिये इसे छुड़वा देना ही योग्य है। और हे महाराज! यह राजा बहुत ही प्रबल मालूम पड़ता है, इसलिये युद्ध करनेमें कुशलता नहीं दीखती है, किन्तु किसी प्रकार उससे मिल लेना ही उचित है।"

तब राजाने मंत्रियोंकी सलाहके अनुसार दूतको छुड़वाकर कहा कि तुम अपने स्वामीसे कहदो कि मैं आपकी आज्ञा माननेको तत्पर हूं। यह सुनकर दूत हर्षित होकर पीछे श्रीपालके पास गया, और यथावत् वार्ता कह दी कि राजा पहुपाल आपसे आपकी आज्ञानुसार मिलनेको तैयार हैं।

तब श्रीपालने मैनासुंदरीसे कहा—"प्रिये! राजा तुम्हारे कहे अनुसार मिलनेको तैयार है। अब उसे अभयदान देना ही योग्य है।" मैनासुंदरीने कहा—"आपकी इच्छा हो सो कीजिये।" तब श्रीपालने पुनः दूतको बुलाकर राजा पहुपालके पास यह संदेशा भेजा कि आप चिंता न करें, और अपने दलबल सहित जैसा राजाओंका व्यवहार है उसी प्रकारसे आकर मिलें। सो दूतने जाकर राजा पहुपालको यह संदेशा सुनाया। सुनकर राजाको बहुत हर्ष हुआ और

दूतको वहुतसा पारितोषिक देकर विदा किया। तथा आप डंका, निशान, हय, गय, रथ, बाहनादि सहित बड़ी धूमधामसे मिलनेको चला। जब पास पहुँचा तब राजा पहुपाल हाथीसे उतरकर पांव प्यादे होगया। यहां श्रीपालजी भी श्वसुरको पांव प्यादे आते देखकर आप भी पांव प्यादे चलकर सन्मुख गये, और दोनों परस्पर कंठसे कंठ लगाकर मिले। दोनोंको बहुत आनंद हुआ। राजा पहुपालके मनमें एकदम कुछ अनोखे भाव उत्पन्न हुए, इसलियें वह श्रीपालके मुँहकी ओर देखकर बोले–

"हे राजराजेश्वर! आपको देखकर मुझे बहुत मोह उत्पन्न होता है, परन्तु मैं अबतक आपको पहिचान नहीं सका हूं, कि आप कौन हैं?" तब श्रीपाल हंसकर बोले–"महाराज, मैं आपका लघु जंवाई श्रीपाल ही तो हूं, जो मैनासुंदरीसे बारह वर्षका वादा करके विदेश गया था, सो आपके प्रसादसे आज पीछे आया हूं।" यह सुनकर राजानें फिरसे श्रीपालजीको गलेसे लगा लिया, और परस्पर कुशल क्षेम पूछकर हर्षित हुए। नगरमें आनन्द भेरी बजने लगी। फिर राजा अपनी पुत्रीके पास गया, और क्षमा मांगने लगा–

"हे पुत्री! तू क्षमा कर। मैंने तेरा बड़ा अपराध किया है! तू सच्ची धर्मधुरंधर शीलवती सती है। तेरी बड़ाई कहां तक करूँ?" मैनासुंदरीने नम्र होकर पिताको सिर झुकाया। पश्चात् राजा रयनमंजूषादि सब रानियोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ, और सर्व संघको लेकर नगरमें लौट आया। नगरकी शोभा कराई गई। घर घर मंगल वधाये होने लगे। राजाने श्रीपालका अभिषेक कराया

और सब रानियों समेत वस्त्राभूषण पहिराये। इसप्रकार श्वसुर जँवाई मिलकर सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे।

श्रीपालका चंपापुर जाना।

इसप्रकार सुखपूर्वक रहते हुए श्रीपालको बहुत समय बीत गया। एक दिन बैठे बैठे उनके मनमें वही विचार उत्पन्न होगया, कि जिस कारण हम विदेश निकले थे, वह अभी पूर्ण नहीं हो पाया है। अर्थात् पिताके कुलकी प्रख्याति तो नहीं हुई, और मैं वही राज-जँवाई ही बना हुआ हूं इसलिये अब अपने देशमें चलकर अपना राज्य प्राप्त करना चाहिये। यह सोचकर श्रीपालजी राजा पहुपालके निकट गये, और देश जानेकी आज्ञा मांगी। तब राजाको भी उनकी इच्छा प्रमाण आज्ञा देनी पड़ी।

श्रीपाल मैनासुंदरी आदि आठ हजार रानियों और बहुत सैन्या सहित उज्जैनसे विदा हुए। राजा पहुपाल आदि बहुतसे राजा भी उनको पहुंचानेको आये, और सबने शक्ति प्रमाण बहुमूल्य वस्तुएं भेंट कीं।

बहुत भूप इकठे भये; दियो भेंट बहु माल।
कोलाहल होवत भयो; चलो राव श्रीपाल ॥ १ ॥
श्रीपाल चलो मेरू हलो; जागो वासक शेष।
गज घण्टा गाजहिं प्रबल; भाजहिं अरि तज देश ॥ २ ॥
बाजे निशान अरु सैन सब; गिनी कौनसे जाय।
कलमले दश दिगपाल हो; कंपे थर हर राय ॥ ३ ॥

धूल उड़ी आकाशमें, लोप भयो है भान।
खलबल हुई भुवि लोकमें, शब्द सुनिय नहिं कान ॥४॥
अंधकार प्रगट्यो तहां, जुरी सेन गंभीर।
और कहा दशहू दिशा, खूट गयो तृण नीर ॥ ५ ॥
लांघत गिरि खाई नदी, वन थल नगर अपार।
वश कर बहु नृप आइयो, चंपापुरी मँझार ॥ ६ ॥

श्रीपालजी इस प्रकार बड़ी विभूति सहित स्वदेश चंपापुरके उद्यानमें आये, और नगरके चहुँ ओर डेरा डलवा दिये। सो नगर-निवासी इस अपार सैन्याको देखकर हक्का-बक्कासे भूल गये, और सोचने लगे कि यह अचानक ही हम लोगोंका काल कहांसे उपस्थित हुआ है। पश्चात् श्रीपाल सोचने लगे, कि इसी समय नगरमें चलना चाहिये। ठीक है-बहुत दिनोंसे विछुरी हुई प्यारी प्रजाको देखनेके लिये ऐसा कौन निष्टुर राजा होगा, जो अधीर न हो जाय? सभी हो जाते हैं।

तब मंत्रियोंने कहा-"स्वामी! एकायक नगरमें जाना ठीक नहीं है। पहिले संदेशा भेजिये, और यदि इसपर वीरदमन सरल मनसे ही आपको आकर मिले तो ही इस प्रकार चलना ठीक है। अन्यथा युद्ध करना अनिवार्य होगा क्योंकि राज्य हाथमें आजाने पर क्वचित् पुरुष ही ऐसा होगा जो चुपकेसे पीछा सौंप दे। इसलिए यदि उन्हें कुछ शल्य होगी तो भी प्रगट हो जायगी।" श्रीपालको यह मंत्र अच्छा लगा, और तुरंत दूतको बोलाकर सब बात समझा-

कर राय वीरदमनके पास भेजा। वह दूत शीघ्र ही राजा वीरदमनकी सभामें पहुँचा, और नमस्कार कर कहने लगा—

"हे महाराज! आज राजा श्रीपाल बहुत परिग्रह और विभव सहित आ पहुंचे हैं। सो आप चलकर शीघ्र ही उनसे मिलो, और उनका राज्य पीछा उनको सौंप दो"। यह सुनकर वीरदमन पहिले तो प्रसन्न हुआ, और श्रीपालकी कुशल पूछने लगा। जब दूतने सब वृत्तांत—घरसे निकलने, विदेश जाने, आठ हजार रानियोंके साथ विवाह करने और बहुतसे राजाओंके वश करने आदिका कुल समाचार वह सुनाया, तब वीरदमन बोला—

'रे दूत! तू जानता है, कि क्या राज्य और स्त्री भी कोई किसीको मांगनेसे दे देता है? ये चीजें तो बाहुबलसे ही प्राप्त की जाती हैं। जिस राज्यके लिये पुत्र पिताको, भाई भाईको, मित्र मित्रको मार डालते हैं, क्या वह राज्य बिना रणमें शस्त्रप्रहार किये योंही सहजर भिक्षा मांगनेसे मिल सकता है? क्या तूने नहीं सुना, कि भरत चक्रवर्तीने राज्यहीके लिये तो अपने भाई बाहुबलपर चक्र चलाया था। विभीषणने रावणको मरवाया था, कौरवों और पांडवोंमें महाभारत हुआ था, सो राज्य क्या मैं यों ही दे सकता हूँ? नहीं, कदापि नहीं। यदि श्रीपालमें बल हो तो रणके मैदानमें आकर ले लेवे।"

यह सुनकर वह दूत फिर विनय सहित बोला—'हे राजन्! ऐसी हठ करनेसे कुछ लाभ नहीं है। श्रीपाल बड़ा पुरुषार्थी वीर कोटीभट्ट और बहुत राजाओंका मुकुटमणि महामंडलेश्वर राजा है।

अपूर्व वैभवसहित श्रीपालराजा का चम्पापुरमें प्रवेश । (देखो पृ० १६६)

" श्री जैन आत्मानंद सभा "ना बंधुकृत्यथी.
श्री महोदय प्रेस-भावनगर.

उसके साथ बड़े २ राजा हैं, अपार दलबल है, आपकी उससे मिलनेहीमें कुशल है। यदि आप उससे मिलेंगे तो वह न्यायी है, आपको पिताके तुल्य ही मानेगा, अन्यथा आप बड़ी हानि उठायँगे।" दूतके ऐसे वचनोंसे वीरदमनको क्रोध आगया। वे लाल२ आंखें दिखाकर बोले—

"रे अधम! तुझे लज्जा नहीं। मेरे साम्हने ही ढिठाई करता जा रहा है। तू अभी मेरे बलको नहीं जानता है। मेरे साम्हने इन्द्र, चन्द्र, नरेन्द्र, खगेन्द्र, आदिकी भी कुछ सामर्थ्य नहीं है। फिर श्रीपाल तो मेरे आगे लड़का ही है। उससे युद्ध ही क्या करना है? बातकी बातमें उसका मान हरण करूंगा।"

तब दूत फिर बोला—"हे राजन्! आप अपने मनका यह मिथ्याभिमान छोड़ दो। श्रीपाल राजाओंका राजा है। महीमंडल-पर जितने बड़े२ राजा हैं कि जिनके यहां आपके सरीखे दासत्व करते हैं उन सबने उनकी सेवा स्वीकार करली है। फिर तुम्हारी गिनती ही क्या है? वनमें बहुत जानवर होते हैं, परन्तु एक हाथीकी चिंघाड़से वे कोई नहीं ठहर सकते, और वैसे हजारों हाथी भी एक सिंहकी गर्जनासे दिशा विदिशाओंको भाग जाते हैं। हजारों सांपोंके लिये एक गरुड़ ही बस है। इसी प्रकार तुम जैसे करोड़ों राजा आ जायें तो भी उस भुजबलीके एक ही प्रहार मात्रमें निगर्व होकर शस्त्र छोड़ देंगे, अर्थात् वह एक ही बारमें सबका संहार करनेको समर्थ है।"

तब क्रोधकर वीरदमन बोले—"अरे धीठ! तू मेरे साम्हनेसे हठ जा। मैं तुझे क्या मारूं? क्योंकि राजनीतिका यह धर्म नहीं

है जो दूतको मारा जाय। तुझे मारनेसे मेरी शोभा नहीं है। तु मेरे ही साम्हने मेरी निन्दा और श्रीपालकी बड़ाई करता है। क्या मैं उसे नहीं जानता हूं ? वह मेरा ही लड़का तो है। मैंने उसे गोदमें खिलाया है और कोढ़ी होकर वह जब घरसे निकला था, तब रोता हुआ गया था। सो अब कहांका बलवान् होगया ? और उसके पास इतनी सैन्या कहांसे आ गई, जो मुझसे लड़नेका साहस करता है ? जा जा, देख लिया मैंने उसका बल ! उससे कहदें कि क्यों अपनी हंसी कराता है ?" तब वह दूत फिर बोला—

"देखो राजाजी, अभिमान मत करो। भरतने अभिमान किया सो चक्रवर्ती होकर भी बाहुबलीसे अपमानित हुए। रावणने मान किया, सो लक्ष्मणसे मारा गया। दुर्योधनका मान भीमने मर्दन किया। जरासिंधुको श्रीकृष्णने मारा, इत्यादि बड़े२ पुरुषोंका भी मान नहीं रहा, तो तुम्हारी गिन्ती ही क्या है ? इसलिये मैं फिर कहता हूं कि जो अपना भला चाहो तो श्रीपालकी सेवा करो। क्योंकि यदि वह एक ही वीरको आज्ञा कर देगा तो वही वीर तुमको क्षणभरमें संहार कर डालेगा।"

तब दूतके ऐसे वचन सुनकर वीरदमन बोले—"इस दुष्टकी खाल निकलवाकर भुसा भर दो, अर्थात् मार डालो। यह मेरे ही साम्हने बार २ मेरी निंदा करता है, और मनमें तनिक भी शंका नहीं करता।" तब मंत्री बोले—"महाराज, दूतोंपर क्रोध नहीं करना चाहिये। इनका स्वभाव ही यह है। ये तो अपने स्वामीके प्रेरे हुए निडर होकर कठिनसे कठिन शब्द बोलते हैं। इनको कोई नहीं

मारता है। इनका साहस अपार होता है, कि परचक्रमें जाकर भी निःशंक हो स्वामीके कार्यमें दत्तचित्त होते हैं। ये लोग अपने स्वामीके कार्यके आगे राजवैभवको भी तुच्छ गिनते हैं। ये लोग बड़े शूरवीर होते हैं कि दूसरेकी सभामें जहां इनका कोई सहायक नहीं है, वहांपर भी अपने स्वामीकी कीर्ति और परचक्रकी निन्दा करते हैं। इनके मनमें सदा अपने स्वामीका हित ही विद्यमान रहता है।

इसलिये महाराज! इस दूतको ऐसा इनाम देना चाहिये, कि जिसका बखान अपने स्वामी तक करता जाय, क्योंकि जिनके कुल परम्परासे राज्य चला आरहा है, वे दूतोंको बहुत सुख देते हैं, इसलिये आप भी यशके भागी होओ। यदि दूतको आप मारोगे तो अपवाद होगा, क्योंकि इन्हें कोई कभी नहीं मारता, ये चाहे जो कुछ क्यों न कहें। ये बेचारे स्वामीके बलसे गर्जते हैं।"

तब वीरदमनने दूतका सन्मान कर उसे बहुतसा द्रव्य दिया और कहा कि तुम श्रीपालसे जाकर कह दो, कि युद्धमें जिसकी विजय होगी वही राज्य करेगा। तब दूत नमस्कार कर वहांसे गया और जाकर श्रीपालसे सब वृत्तांत कह दिया कि बीरदमनने कहा है कि "संग्राममें आकर जुटो और बल हो तो राज्य लेलो।"

श्रीपालका वीरदमनसे युद्ध।

श्रीपालजीको दूतसे यह समाचार सुनते ही क्रोध उत्पन्न हो उठा। ये होठ डंसते हुए बोले-' क्या वीरदमनको इतना साहस होगया है जो मेरे राज्यपर-मेरे द्वारा दिये हुये राज्यपर, इतना गर्जता है और मुझे मेरा ही राज्य पीछा देनेके बदले युद्ध करना चाहता है? अच्छा ठीक है, अभी मैं इसके मानको मर्दन कर अपना राज्य छुड़ाता हूं।"

यह सोचकर उसने तुरन्त ही सैनापतिको आज्ञा दी कि सैन्य तैयार करो। यहां आज्ञाकी देरी थी कि सैन्य तैयार होगया। सब बड़े२ सामन्त बख्तर पहिरकर कठौर हथियार बांधकर वाहनोंपर चढ़ चले। हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ इत्यादिके समूह यथानियम दिखाई देने लगे। शूरोंके चेहरे सूर्यके समान चमकने लगे। घोड़ोंकी हींस, हाथियोंकी चिंघाड़, झूलोंकी झनकार, रथोंकी गड़गड़ाटसे आकाश गुंजने लगा! धूल उड़कर बादलोंकी शंका उत्पन्न करने लगी। बाजोंके मारे मेघगर्जना भी सुनाई नहीं देती थी।

इस तरह चतुरंग दल सजकर तैयार हुए, और नगर बाहर रंगभूमिमें आकर जम गये। एक ओर श्रीपालकी सेना और दूसरी ओर काका वीरदमनकी सेना लग रही थी। दोनों परस्पर दाव घात विचारते थे। दोनों ओर बहुत दूर२ तक सिवाय मनुष्यों, घोड़ा, हाथी, रथ आदिके कुछ नहीं दिखाई देता था। शूरवीर रणधीर पुरुष अपने२ कुटुम्बी तथा स्त्रियोंसे क्षमा मांग२कर और उन्हें धैर्य देदे-कर चले जारहे थे। उनकी स्त्रियां भी उनसे कहती थीं-

"हे स्वामिन्! यद्यपि जी तो नहीं चाहता कि आपको छोड़ें परन्तु नीति और धर्म कहता है कि नहीं, इस समय रोकना पाप है। इससे स्वामीद्रोह समझा जाता है। वर्षोंसे जिसका नमक खा रहे हैं, आज समय आनेपर अवश्य ही साथ देना चाहिये। संसारमें सब कुछ अनित्य हैं, परन्तु वीर पुरुषोंका नाम पृथ्वीपर अमर रहता है।

आप जाओ, और तन, मनसे स्वामीका साथ दो। घरकी चिंता न करना। हम लोगोंका कर्म हमारे साथ है। आप कृतकार्य होनेकी चेष्टा करना, युद्धमें हारकर पीठ दिखाकर व पीठपर घाव खाकर पीछे घर मत आना। पीठ दिखाकर मुझे मुंह न दिखाना। कायरकी स्त्री कहलानेके बदले मुझे विधवा कहलाना अच्छा है। शूरवीरोंकी स्त्रियां विधवा होने अर्थात् युद्धमें उनका पति मर जानेपर भी वे विधवा नहीं होती हैं, क्योंकि उनके पतियोंका नाम सदैव जीता है। जाओ और जय प्राप्त करो। अपने घरानेमें स्यानोंने भी ऐसे ही नाम कमाया है। शरीर, स्त्री, पुत्रादि कोई काम नहीं देते। संसारमें कायरका जीना मरनेसे भी खराब है, क्योंकि एक दिन तो मरना है ही। क्योंकि यह विनाशीक शरीर कोटि यत्न करनेपर भी स्थिर नहीं रहेगा। तब बदनाम होकर बहुत जीनेसे नेकनामीके साथ शीघ्र ही मरजानेमें हानि नहीं है। अपघात नहीं करना चाहिये, और जीतेजी कायर भी नहीं होना चाहिये। आज हर्ष है कि आप युद्धमें जारहे हैं! आप कृतकार्य होंगे और मैं भी अपने आपको वीर पुरुषकी पत्नी कहलानेका सौभाग्य प्राप्त करूँगी।"

शूरवीर शूर स्त्रियां इस तरह सिखावन देती थीं जबकि कायरोंकी कायर स्त्रियां कहती थीं—"स्वामिन्! देखो, मैं कहती थी कि इस प्रकारकी नौकरी मत करो, यह मौतकी निशानी है। न मालूम कब अचानक आ बीतेगी। मेरा कहना न माना, उसीका यह फल है! तुम तो चले, अब मैं क्या करूँगी? बालबच्चोंकी रक्षा कैसे होगी? मेरी यह तरुण अवस्था कैसे कटेगी? देखो, अभी कुछ नहीं गया है। चलो, मौका पाकर भाग चलें। कहीं जंगलमें रहकर दिन वितावेंगे। यह राज्य न सही अन्य सही। व्यर्थ क्यों मरते हो? और हम लोगोंकी हत्या शिर लेते हो। मैं तो नहीं जाने दूँगी फिर तुमको कसम है जो जाओ। मैं तुम्हारे जाते ही मर जाऊँगी। फिर तुम लौटे भी तो किससे मिलोगे? कहांका राजा, कहांकी प्रजा। अपना जी सुखी तो जहान् सुखी।"

इस प्रकार स्त्रियां जहांतहां अपने पतियोंको समझाने लगीं। यह सुनकर कायरोंके दिल धड़कने लगे और शूरवीरोंके दिल फूलने लगे, इत्यादि।

इधर दोनों ओरसे रणभेरी बजा दीगई। रणके वाजे बजने लगे, जिसको सुनकर शूरवीर पतंगके समान उछल २ कर प्राण समर्पण करने लगे। हाथीवाले हाथीवालोंसे, घोड़ेवाले घोड़ेवालोंसे, रथ रथसे, प्यादें प्यादोंसे इस प्रकार दोनों दल परस्पर भूखे सिंहके समान एक दूसरेपर टूट पड़े। तलवारोंकी खनखनाहट और चमकदमकसे बिजली भी शर्मा जाती थी। मेघोंको शर्मानेके लिये तोपोंके गोले गड़गड़ाते हुए सूर्यको आच्छादित कर देते थे। वीरोंके शिर

कट जानेपर भी कुछ समय तक रुण्ड मारर करता रहता था। लोहूकी नदी बहने लगी, जहांतहां रुण्ड मुंड दिखाई देने लगे जिसे देखकर वीरोंको जोश बढ़ने लगा और कायरोंके छक्के छूटने लगे।

इस तरह दोनों ओरसे घमसान युद्ध हुआ, परन्तु दोनोंमेंसे कोई एक भी पीछे नहीं हटता था। जब दोनों ओरके मंत्रियोंने देखा, कि इन दोनोंमेंसे कोई भी नहीं हटता, दोनों पक्ष बलवान् और दोनों भुजबली हैं, तब यदि ये दोनों परस्पर ही युद्ध करें तो ठीक है, दोनों ओरकी सेना क्यों व्यर्थ कटे? यह विचारकर मंत्रियोंने अपने २ स्वामियोंसे कहा कि आप राजा राजा ही युद्ध करें, व्यर्थ सैन्य कटानेमें कुछ लाभ नहीं है। सो यह विचार दोनोंको पसंद आया और दोनों अपनी२ सेनाओंको रोककर परस्पर ही युद्ध करना निश्चितकर काका और भतीजा रणक्षेत्रमें आ डटे।

वीरदमन बोले—'आओ बेटे! हम तुम परस्पर ही लड़ लें। सैन्यका व्यर्थ संहार क्यों किया जाय?' तब श्रीपालजी भी हर्षित होकर बोले—बहुत ठीक काकाजी! परन्तु अब भी मैं तुम्हें समझाकर कहता हूं, कि तुम दूसरेका राज्य छोड़दो, इसीमें तुम्हारी भलाई है। क्योंकि मैं तुमको हमेशासे पिताके समान जानता रहा हूं। सो क्या मैं अपने ही हाथसे तुम्हें मारूं? यह सुनकर वीरदमन क्रोधकर बोले—"अरे श्रीपाल! तू अभी भी लड़का है, तुझे युद्धका व्यवहार मालूम नहीं है। जब रणक्षेत्रमें आ ही गये, तो किसका पिता और किसका पुत्र? किसका भाई और किसका मित्र? यहां डरनेसे व सम्बन्ध बताकर कायरीसे काम नहीं चलता। इसीसे मैंने

पहिले ही तुझे समझाया था, परन्तु तू न माना और लड़कपन किया। सो अब क्या मेरे हाथसे तू बचकर जा सकेगा ? कभी नहीं, कभी नहीं।" तब कोटीभट्टको भी क्रोध आगया। वे बोले—

"रे वीरदमन ! तेरे बराबर अज्ञानी कोई नहीं है, जो पराये राजपर गर्ज रहा है। देखो, कहा है कि जो परस्त्रीसे प्रीति करता है, जो मुंहसे गाली निकालता है, जो पराधीन भोजन करता है, जो ज्ञान रहित तप करता है, जो पराये धनपर सुख भोगता है, जो सांपसे मित्रता करता है, जो स्त्रीपर भरोसा रखता है, जो अपने मनकी बात सबसे कहता है, जो धनी होकर पराधीन रहता है, जो विना द्रव्य दानी बनता है, जो वेश्यासे प्रीति करता है सो किसी न किसी दिन बहुत धोखा खाता है। जो कुशील सेवन करता है, जो भंग पीकर बुद्धिमान बनता है, जो पण्डित होकर योंही ठौर ठौर वादविवाद करता है, जो हंस मानसरोवर छोड़ देता है, जो वेश्या लज्जावनी बन जाती है, जो जुआमें सच बोलता है, जो दूसरेकी संपत्तिपर ललचाता है, उससे अधिक और मूर्ख संसारमें कौन है?"

वीरदमनको उक्त नीति सुनकर लज्जा तो अवश्य हुई, परन्तु वह उस समय लाचार था। वीर पुरुष युद्धमे नहीं हटते, इस लिये उसने धनुष उठा लिया। और ललकारकर बोला—"बस, रहने दे तेरी चतुराई। अब कायरीसे बातें बनानेका समय नहीं है। यदि कुछ बाहुबल है, तो साम्हने आ।" तब तो श्रीपालसे नहीं रहा गया। वे कानके पास तक धनुष खेंचकर सन्मुख होगये। सो जैसे अर्जुन और कर्ण, रावण और लक्ष्मण, तथा भरत और बाहुबलीका

राजा वीरदमन की सेना श्रीपाल का युद्ध । (देखो पृ० १७२)

श्री महोदय प्रेस—भावनगर.   " श्री जैन आत्मानंद सभा "ना बंधुकृत्यथी.

परस्पर युद्ध हुआ था, वैसा ही होने लगा । जब सामान्य हथिया- रोंसे बहुत युद्ध हुआ और कोई किसीको न हरा सका, तब शस्त्र छोड़कर मल्लयुद्ध करने लगे, सो बहुत समय तक तो योंही लिपटते लिपटाते रहे, परन्तु जब बहुत देर होगई तब श्रीपालने वीरदमनको दोनों पांव पकड़के उठा लिया और चाहा कि पृथ्वीपर दे मारे, परन्तु दया आगई, इसलिये धीरेसे पृथ्वीपर लिटा दिया। सब ओरसे "जय जय" शब्द होने लगे । वीरोंने श्रीपालके गलेमें जयमाल पहिनाई और बोले—

राजन् ! तुम दयालु हो । पश्चात् जब श्रीपालने वीरदमनको छोड़ दिया तब वीरदमन बोले—"हे पुत्र ! यह ले, तू अपना राज्य सम्हाल । मैंने तेरा बल देखा । तू यथार्थमें महाबली है । हमारे इस वंशमें तेरे जैसे शूरवीर ही होने चाहिये ।" तब श्रीपाल बोले— "हे तात ! यह सब आपका ही प्रसाद है । आपकी आज्ञा हो सो करूं ।"

यह सुनकर वीरदमन बोले—"पुत्र ! ठीक है, अब मेरा यह विचार है कि तू राज्यभार ले और मैं जिन दीक्षा लूं जिससे यह भवत्रास मिटे ।" पश्चात् आनंद-भेरी बजने लगी । सबका भय दूर हुआ । जहां तहां मंगल गान होने लगे । वीरदमनने श्रीपालका राज्याभिषेक कराकर पुनः राज्यपद दिया और बोले-हे धीरवीर ! अब तुम सुखसे चिरकाल तक राज्य करो । और नीति न्यायपूर्वक पुत्रवत् प्रजाका पालन करो । दुःखी दरिद्रियोंपर दयाभाव रखो और मेरे ऊपर क्षमा करो । जो कुछ भी मुझसे तुम्हारे विरुद्ध

हुआ है, सो सब भूल जाओ । अब मैं जिनदीक्षारूपी नावमें कर भवसागरको तिरूंगा ।

इस तरह वीरदमन अपने भतीजे श्रीपालको राज्य देकर आ वनमें गये और वस्त्राभूषण उतारकर निज हस्तोंसे केशोंका लों किया । रागद्वेषादि चौदह अन्तरङ्ग और क्षेत्र, वास्तु आदि दश बाह्य ऐसे सब चौवीस प्रकारके परिग्रहको त्याग कर पंच महाव्रत धारण किये, और घोर तपश्चरणद्वारा चार घातिया कर्मोका ना केवलज्ञान प्राप्त किया, और बहुत जीवोंको धर्मोपदेश देकर उन्हें संसारसे पार किया । पश्चात् शेष अघाती कर्मोको भी आयुके अन्त समय निःशेष कर परमधाम-मोक्षको प्राप्त किया ।

धर्म बड़ो संसारमें, धर्म करो नरनार ।
धर्म योग श्रीपालजी, पाई लच्छ अपार ॥ १ ॥
वीरदमन मुक्तहिं गये, धर्म धारकर सार ।
आठ सहस रानीनकी, मैना भई पटनार ॥ २ ॥
धर्मयोग जिय सुख लहे, योग योग शिवसार ।
'दीपचन्द' नित संग्रहो, धर्म पदारथ सार ॥ ३ ॥

श्रीपालका राज्य करना।

अशुभ कर्म भयो दूर सब, शुभ प्रगट्यो भरपूर।
राज्य करे विलसे विभव, श्रीपाल बलशूर॥
कीनों यश भूवि लोकमें, दुर्जनके उरु साल।
सकल जीव रक्षा करी, महाराज श्रीपाल॥

इस प्रकार राजा श्रीपाल आठ हजार रानियों सहित इन्द्रके समान सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे। देशोंदेशमें इनकी प्रख्याति बढ़ गई। अनेक देशोंके बड़े२ राजा इनके आज्ञाकारी होगये। जो राजा लोग अनेक द्वीपों और देशोंसे साथ पहुंचाने आये थे, सो सबको यथायोग्य सन्मानपूर्वक विदा किये। और प्रजाको प्रीतिसे पुत्रवत् पालन करने लगे। नित्यप्रति चार प्रकारके संघको चारों प्रकारके दान भक्तिभावसे देने लगे। दुःखित तो कोई नगरमें बुभुक्षित ही क्या राज्यभरमें कठिनतासे मिलता था। इत्यादि राज्य–वैभव सब कुछ था, और इनको किसी बातकी कमी नहीं थी, तौभी ये सब सुखके भूल जिनधर्मको नहीं भूलते थे। नित्य नियमानुसार वर्धमान-रूपसे षट् आवश्यकों-देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दानमें यथेष्ट प्रवृत्ति करते थे।

इस तरह राज्य करते हुए श्रीपालका सुखसे समय जाता था, कितनेक दिनों बाद मैनासुन्दरीको गर्भ रहा, उसे अनेक प्रकारके शुभ दोहले उत्पन्न हुए और श्रीपालने उन सबको पूर्ण किये। इस-तरह जब दश महिने होगये, तब शुभ घड़ी मुहूर्तमें चन्द्रमाके समान उज्वल कांतिका धारी पुत्र हुआ। पुत्रजन्मसे सर्व कुटुंब व प्रजाको

अत्यानंद हुआ, और पुत्र-जन्मोत्सवमें बहुत द्रव्य खर्च किया गया। याचक जन निहालकर दिये गये। पश्चात् ज्योतिषीको बुलाकर गृहादिका व्योरा पूछा, तो उसने बहुत सराहना करके कहा कि यह पुत्र उत्तम लक्षणोंवाला है, इसका नाम धनपाल है !

इस तरह दूसरा महीपाल, तीसरा देवरथ, और चौथा महारथ ये चार पुत्र मैनासुन्दरीके और हुए। रयनमंजूषाके सात पुत्र हुए, गुणमालाके पांच पुत्र हुए, और सब स्त्रियोंसे किसीके एक, किसीके दो इस प्रकार महाबली, धीरवीर गुणवान् कुल बारह हजार पुत्र हुए। वे नित्यप्रति दोयजके चंद्रमाके समान बढ़ने लगे।

अहहा ! देखो, धर्मका प्रभाव ! इससे क्या नहीं हो सकता ! श्रीपालजी धर्मके प्रसादसे सुखपूर्वक काल व्यतीत करते थे। एक दिन श्रीपालजी सिंहासनपर बैठे थे, पास ही बाईं ओर मैनासुंदरी भी बैठी थी। बन्दीजन विरद बखान कर रहे थे। सेवकजन चमर ढोर रहे थे। नृत्यकारिणी नृत्य कर रही थीं। गीत वादित्र बज रहे थे, विनोद हो रहा था, कविजन पुराण पढ़ रहे थे। चारों ओर कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी, कपूर आदि पदार्थोंकी सुगंधि फैल रही थी। अबीर गुलाल उड़ रहा था। ताम्बूल, सोपारी इलायची, जावित्री, लोंग आदि बँट रहे थे। कहीं आम, जाम, सीताफल, नारियल, केला आदि फल और किसमिस, द्राक्ष, छुहारा, चिरोंजी, काजू, पिस्ता, अखरोट, अंगूर आदि मेवे बँट रहे थे। इस प्रकार राजा क्रीड़ा कर रहा था कि वनमाली आया, और वह नमस्कार कर छह ऋतुके फलफूल राजाको भेंट करके नम्र हो बोले—

"हे स्वामिन्! इस नगरके वनमें समीप ही श्री १००८ केवली मुनिराजका आगमन हुआ है! जिनके प्रभावसे सब ऋतुओंके फलफूल साथ ही फूले और फल गये हैं। सुखे सरोवर भर गये हैं। जाति-विरोधी जीव परस्पर वैर छोड़कर विचर रहे हैं। गायका बच्चा सिंहिनीके स्तनसे लग जाता है। साँप नौलको खिलाता है। चूहा बिल्लीसे क्रीड़ा करता है। चहुंओर शिकारियोंको शिकार भी नहीं मिलती है। हे नाथ! ऐसा अतिशय हो रहा है।

यह सुनकर श्रीपालजी सिंहासनसे उतरे, और वहींसे प्रथम ही सात पद चलकर परोक्ष रीतिसे नमस्कार किया और वस्त्राभूषण जो पहिरे थे सो सब उतारकर वनमालीको देदिये तथा और भी बहुत इनाम उसको दिया।

पश्चात् नगरमें आनन्दभेरी बजवा दी, कि सब लोग प्रभु वंदनाको चलैं। नगरके बाहर वनमें श्री महामुनिराज आये हैं। पश्चात् अपनी चतुरंग सैन्य सजाकर वे बड़े उत्साहसे प्रफुल्लित चित्त हो रनवास और स्वजन पुरजनोंको साथ लेकर वंदनाको चले। कुछ ही समयमें उद्यानमें पहूँचे, जहांकी शोभा देखकर मन आनन्दित होता था। मंद सुगंधि पवन चल रही थी। मानों वसन्त ऋतु ही हो।

जब निकट पहूँचे, तो श्रीपालजी वाहनसे उतरकर यहां वहां देखने लगे, तो कुछ ही दूर सन्मुख अशोक वृक्षके नीचे सब दुःखको नाश करनेवाले महामुनिराज विराजमान थे, सो देखते ही श्रीपालके हर्षकी सीमा न रही। वे श्रीगुरुको नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा देकर स्तुति करने लगे—

धन्य धन्य तुम श्रीमुनिराज, भवजल तारन तरन जहाज।
एक परम पद जाने सोय, चेतन गुण आराधे जोय॥
राग द्वेष नहिं जाके चित्त, समता केवल पाले नित्त।
तीन गुप्ति पालन परमत्थ, रत्नत्रय धारण समरत्थ॥
तीन शल्य मेंटन शिवकंत, ज्ञान धरण गुण वल्लभ संत।
भवजल तारण तरण जहाज, पंच महाव्रत धर मुनिराज॥
मकरध्वज खंडो धर भाव, छहों द्रव्य भाषण गुण राव।
आठ कर्म माया मद हर्न, आठ सिद्ध गुण धारण धर्म॥
पूरण ब्रह्मचर्य प्रतिपाल, दश लक्षण गुण धरन दयाल।
द्वादशतप धारो जिय नाहिं, द्वादशांग भाषण जो आहि॥
तेरा विधि चारित्र प्रमाण, पाले जो व्रत धरन सुजान।
सहें परीषह वाईस सोय, इनके शत्रु मित्र सम दोय॥
कहाँ तक कहूँ आप गुण माल, द्वय कर जोड़ नमे श्रीपाल।

इस तरह सब पुरजन और रनवास सहित श्रीपाल स्तुति करके श्रीगुरुके चरणकमलके समीप हर्षित होकर बैठे। और भी सब लोग यथायोग्य स्थानपर बैठे। पश्चात् राजा बोले—"स्वामिन्! कृपाकर मुझे संसारसे पार उतारनेवाले धर्मका उपदेश दीजिये।"

तब श्रीगुरु बोले—'हे राजन्! तुमने यह अच्छा प्रश्न किया। अब ध्यानसे सुनो। वस्तुका जो स्वभाव है, वही धर्म है। सो इस आत्माका स्वभाव शुद्ध चैतन्य अर्थात् अनन्तदर्शन, ज्ञानस्वरूप है और अमूर्तीक है, परन्तु यह अनादि कर्मबन्धके कारणसे चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण करता हुआ पर्यायबुद्धि होरहा है। इस-

लिये इसको परपदार्थोंसे भिन्न, अनंतदर्शन, ज्ञानमयी सच्चिदानंद स्वरूप, एक अविनाशी, अखण्ड, अक्षय, अव्याबाध, निरंजन, स्वयं बुद्ध, परमात्म, स्वरूप, समयसार, निश्चय करना, सो तो सम्यग्दर्शन है। और न्यूनाधिकता तथा संशय विपर्यय और अनध्यवसायादि दोषोंसे रहित जो वस्तुको सूक्ष्म भेदों सहित जानना सो सम्यक्ज्ञान है, और स्वस्वरूपमें लीन होजाना सो सम्यक्चारित्र है।

इस तरह निश्चयरूपसे तो धर्मका स्वरूप यह है। सो व्यवहार विना निश्चय होता नहीं। क्योंकि व्यवहार धर्म निश्चयधर्मका कारण है। इसलिये व्यवहारसे सप्त तत्वोंका श्रद्धान सो दर्शन, अथवा इनका जो कारण सत्यार्थ देव, गुरु और शास्त्रका श्रद्धान सो सम्यक्दर्शन है, और पदार्थोंको यथार्थ जानना सो ज्ञान है, और इनकी प्राप्तिके उपायमें तत्पर होना, सो सम्यक्चारित्र है। सो चारित्र दो प्रकार है–सर्वथा त्यागरूप (मुनिका), और एक देश त्यागरूप (गृहस्थका)। पंच महाव्रत. पंच समिति, तीन गुप्तिरूप मुनिका पंचाणुव्रत तथा सप्त शीलरूप श्रावकका होता है।

श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएं हैं जिनमें शक्ति अनुसार उत्तरोत्तर कषायोंकी मंदतासे जैसे जैसे त्यागभाव बढ़ता जाता है वैसी ही ऊपर ऊपरकी प्रतिमाओंका पालन होता जाता है और मुनिका व्रत बाह्य तो एक ही प्रकार है, परन्तु उत्तर गुणो तथा गुणस्थानोंकी परिपाटीसे अन्तरंग भावोंकी अपेक्षा अनेक प्रकार है। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित व्रत पालें, और आयुके अन्तमें दर्शन ज्ञान चारित्र और तप इन चार आराधनाओं पूर्वक सल्लेखना मरण करें।"

इसप्रकार संक्षिप्तसे धर्मोपदेश दिया जिसको सुनकर राजाको परम आनन्द हुआ। पश्चात् श्रीपालजीने विनयपूर्वक पूछा—"हे परम दयालु ज्ञानसूर्य प्रभो! कृपाकर मेरे भवान्तर कहिये, कि किस कर्मके उदयसे मैं कोढ़ी हुआ? किस पुण्य-कर्मके उदयसे सिद्धचक्र व्रत लिया? किस कारण समुद्रमें गिरा? किस पुण्यसे तिरकर बाहर निकला? किस कर्मसे भाँडोंने मेरा विगोवा किया? किस कारणसे वह मिट गया? और किस कारण मैंनासुंदरी आदि बहुतसी रूप व गुणवती स्त्रियां और विभूति पाई?" इत्यादि।

श्रीपालके भवान्तर।

श्री मुनि बोले—"हे राजन्! सुनो। इसी जंबूद्वीपके दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र है। उसके आर्य खंडमें एक रत्नसंचयपुर नामका नगर महारमणीक वन, उपवन, तड़ाग, नदी, कोट, खाई आदि बड़े २ उत्तंग महलोंसे सुसज्जित था। उसका राजा श्रीकंठ विद्याधर महाबलवान् और चतुरंग सैन्याका स्वामी था। उसके यहां सब रानियोंमें प्रधान पट्टरानी श्रीमती थी। सो वह महारूपवती, गुणवती और धर्मपरायणा थी। नित्यप्रति चार संघको भक्तिपूर्वक आहारादिक दान देती थी। एक दिन राजा रानी सहित श्रीजिन मंदिर गया। और जिनदेवकी स्तुति वन्दना करके पीछे फिरा तो वहां परम दिगंबर मुनिराजको विराजमान देखकर नमस्कार किया, और समीप बैठा। श्रीगुरुने धर्मवृद्धि दी और संसारसे पार उतारनेवाले जिनधर्मका उपदेश किया। इससे राजा

आदि बहुत लोगोंने यथायोग्य व्रत लिये और अपने२ आवास स्थानोंको आये और यथायोग्य धर्म पालने लगे।

पश्चात् तीव्र मोहके उदयसे राजाने श्रावकके व्रतोंको छोड़ दिया, और लक्ष्मी, ऐश्वर्य, रूप, कुल, बल और तरुणावस्थाके मदमें उन्मत्त होकर मिथ्यात्वियोंके बहकानेसे वह मिथ्यादेव, धर्म और गुरुकी सेवा करने लगा, तथा जैनधर्मका निंदक होगया। एक दिन वह राजा अपने सातसौ वीरोंको साथ लेकर वनक्रीड़ाको गया था, सो वहां एक गुफामें बाईस परिषहके सहनेवाले ध्यानारूढ़ एक मुनिराजको देखा, जिनका शरीर बहुत क्षीण (दुर्बल) होरहा था, धूलसे भर रहा था और डांस मच्छर आदि लग रहे थे।

वे ऐसे निश्चल विराजमान थे कि जिनके पास सूर्यका उजेला पहुंच भी नहीं सकता था। सो राजाने उन महामुनिको देखकर अपशकुन माना, और 'कोढ़ी है, कोढ़ी है' ऐसा कहकर समुद्रमें गिरवा दिया। परन्तु मुनिका मन किंचित् भी चलायमान न हुआ। पश्चात् राजाको कुछ दया उत्पन्न हुई, सो फिर पानीमेंसे मुनिको निकलवा लिया, और अपने घर आया। पश्चात् कितने दिनोंके राजा फिरसे वनक्रीड़ाको गया, और साम्हने एक क्षीण शरीर, धीरवीर, परम तत्वज्ञानी मुनिको आते हुए देखा। वे रत्नत्रयके धारी महामुनिराज एक मासके उपवासके अनन्तर नगरकी ओर पारणा (भिक्षा) के लिये जारहे थे। सो राजाने क्रोधित होकर मुनिसे कहा—

"अरे निर्लज्ज! बेशरम! तूने लज्जाको कहां छोड़ दी है, जो नंगा फिर रहा है? मैला शरीर, भयावना रूप बनाकर डोलता

है। 'मारो ! मारो ! अभी इसका सिर काटलो' ऐसा कह खड्ग लेकर उठा और मुनिको बड़ा उपसर्ग तथा हास्य किया। पश्चात् कुछ दया उत्पन्न हुई, तब उनको छोड़कर अपने महलको ही चला आया। ऐसे मुनिको वारम्वार उपसर्ग करनेसे उसने बहुत पाप बांधा। एक दिन किसी पुरुषने आकर यह सब मुनियोंके उपसर्ग करनेका समाचार रानी श्रीमतीसे कह दिया, सो सुनते ही रानीको बड़ा दुःख हुआ। वह वार २ सोचने लगी, कि ' हे प्रभो ! मेरा कैसा अशुभ कर्म उदय आया, जो ऐसा पाप करनेवाला भर्तार मुझे मिला ? कर्मकी बड़ी विचित्र गति है। वह इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग कराया करता है। सो अब इसमें किसको दोष दूं ? मैंने जैसा पूर्वमें किया था वैसा पाया।"

इस तरह रानीने बहुत कुछ अपने कर्मोंकी निंदा गर्हा की और उदास होकर पलँगपर जा पड़ी। इतनेमें राजा आया और सुना कि रानी उदास पड़ी हैं। तुरन्त ही रानीके पास आकर पूछने लगा—"प्रिये ! तुम क्यों उदास हो ? जो कुछ कारण हो सो मुझसे कहो। ऐसी कौन बात अलभ्य है, जो मैं प्राप्त नहीं कर सकता हूँ ?" परन्तु रानीने कुछ भी उत्तर न दिया। वैसी ही मुरझाये हुए फूलके समान रह गई। उसे कुछ भी सुध न रही। तब एक दासी बोली—"हे नरनाथ ! आपने श्रावकके व्रत छोड़ दिये और मुनिकी निंदा की। उन्हें पानीमें गिरवा दिया, और बहुत उपसर्ग किया है। सो सब समाचार किसीने आकर रानीसे कह दिये हैं। इसीसे वे दुःखित होकर मुरझाकर पड़ रही हैं।"।

राजा यह बात सुन बहुत लज्जित होकर अपनी भूल पर विचारने और पश्चात्ताप करने लगा। पश्चात् मधुर वचनोंसे रानीको समझाने लगा—"हे प्रिये ! मुझसे निसंदेह बड़ी भूल हुई । यथार्थमें मैंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मिथ्यागुरु, देव धर्मको सेवन किया, और उसीकी कुशिक्षासे सुमतिको छोड़कर कुमतिको ग्रहण किया। मैं महापापी हूँ। मैंने मिथ्या अभिमानके वश होकर बड़े २ अनर्थ किये हैं। मैं अपने आप ही अंधकूपमें गिर गया। प्रिये ! अब मुझे नरकपंथसे बचाओ। मैं अपने किये कर्मोंकी निंदा करता हूँ, उनपर पश्चात्ताप करता हूँ, और उनसे छूटनेकी इच्छासे श्री जिन-देवसे वार २ प्रार्थना करता हूँ।" तब रानी दयावंत हो बोली—

"महाराज ! आपने धर्मकथाको छोड़कर मिथ्यात्व सेवन किया। सो भला नहीं किया। आपने धर्माधर्मकी पहिचान विना किये ही मुनिराजको कष्ट दिया। देखो, धर्मशास्त्रमें कहा है कि जो कोई जिनशासनके व्रतोंकी, जिनगुरु, जिनविंब व जिनधर्मकी निंदा करता है, सो निश्चयसे नरक जाता है। वहांपर मारण, ताड़न, छेदन, भेदन, शूली-रोहणादि दुःखोंको भोगता है। वहां कोई शुलीपर चढ़ाते हैं, घाणीमें पेलते हैं, संडासीसे मुख फाड़कर तांबा, शीशा गला गलाकर पिलाते हैं। लोहेकी पुतली लाल २ गरमकर शरीरसे भिड़ा देते हैं, इत्यादि नाना प्रकारके दुःख भोगना पड़ते हैं। इस-लिये हे स्वामिन्। अब कोई पुण्यके उदयसे यदि आपको अपने अशुभ कृत्योंसे पश्चात्ताप हुआ है, तो श्रीमुनिके पास जाकर जिन-व्रत लो, जिससे अशुभ कर्मोंकी निर्जरा हो।"

यह सुनकर राजा, रानीके कहे अनुसार जिन मंदिरमें गया और प्रथम ही जिनदेवकी स्तुति की। पश्चात् श्रीगुरुको नमस्कार करके बैठा और बोला—"हे दीनदयालु प्रभो! मैंने बड़ा पाप किया है। अब आपके शरणमें आया हूँ। सो मुझे अब नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये"।

तब श्रीगुरुने धर्मका स्वरूप समझाकर कहा—राजन्! तू सम्यग्दर्शन पूर्वक श्री सिद्धचक्रका व्रत पाल, इससे तेरे अशुभ कर्मका क्षय होगा, यह कहकर व्रतकी विधि बताई। सो राजाने मिथ्यात्वको त्यागकर सिद्धचक्र व्रत स्वीकार किया, और सम्यक्त्व ग्रहण किया, तथा पंच अणुव्रत और सप्त शील (तीन गुणव्रत+चार शिक्षाव्रत) अंगीकार किये। फिर अपने स्थानको आया, और उसी समयसे धर्मध्यानमें सावधान हो विधिपूर्वक व्रत पालने लगा। नित्यप्रति जिनेन्द्र देवकी अष्ट प्रकारसे पूजा करता, व दान देता था।

जब आठ वर्ष पूर्ण होगये, तब उसने विधिपूर्वक भाव सहित उद्यापन किया, और अंत समयमें सन्यासमरण कर स्वर्गमें जाकर देव हुआ, और रानी श्रीमती भी सन्यासमरण कर स्वर्गमें देवी हुई। और भी सब यथायोग्य व्रतके प्रभावसे मरण कर अपने२ कर्मानुसार उत्तम गतिको प्राप्त हुए। सो वह (राजा श्रीकंठका जीव) स्वर्गसे चयकर तू श्रीपाल हुआ है और रानी श्रीमतीका जीव चयकर यह मैनासुंदरी हुई है।

इसलिये हे राजन्! तूने जो सातसौ वीरों सहित मुनिराजकी 'कोढ़ी २' कहकर ग्लानि की थी, उसीके प्रभावसे तू उन सब

सखों सहित कोढ़ी हुआ । और मुनिको पानीमें गिराया, उससे तू भी सागरमें गिरा । फिर दयालु होकर निकाल लिया, इसीसे तू भी तिरकर निकल आया । तूने मुनिकी 'भ्रष्ट २' कहकर निंदा की थी, इसीसे भाँड़ोंने तेरा अपवाद उड़ाया । तूने मुनिके मारनेको कहा था, इसीसे तू शूलीके लिये भेजा गया, और दुःख पाया । इसलिये हे राजा ! मुनिकी तो क्या, किसी भी जीवकी हिंसा दुःखकी देनेवाली होती है, और मुनिघातक तो सातवें नरक जाता है । तूने पूर्वजन्ममें श्रावकके व्रतों सहित सिद्धचक्र व्रतका आराधन किया था, जिससे यह विभूति पाई, और पूर्व भवके संयोगसे ही श्रीमतीजीके जीव मैनासुंदरी और इस पवित्र सिद्धचक्रव्रतका लाभ तुझे हुआ ।"

यह सुनकर श्रीपालने मुनि महाराजकी बहुत स्तुति वंदना की और अपने भवांतरकी कथा सुनकर पापोंसे विशेष भयभीत हो धर्ममें दृढ़ हुआ । पश्चात् श्रीगुरुको नमस्कारकर निज महलोंको आया और पुण्ययोगसे प्राप्त हुए विषयोंको न्यायपूर्वक भोगने लगा । इस तरह बहुत दिनतक इन्द्रके समान ऐश्वर्यधारी श्रीपालने इस पृथ्वीपर नीतिपूर्वक राज्य किया । इसके राज्यमें दीनदुःखी कोई भी नहीं माल्ूम होते थे ।

श्रीपालकी दीक्षा ।

एक दिन राजा श्रीपाल सुखासनसे बैठे हुए दिशाओंका अवलोकन कर रहे थे कि उल्कापात हुआ (बिजली चमकी), उसे देखकर सोचने लगे-'अरे ! जैसे यह बिजली चमक कर नष्ट होगई, ऐसे ही एक दिन ये सब मेरे वैभव,

तन, धन, यौवनादि भी विनश जायँगे । देखो ! संसारमें कुछ भी स्थिर नहीं है । मेरी ही कई अवस्थाएँ बदल गई हैं । अब अचेत रहना योग्य नहीं है । इन विषयोंके छोड़नेके पहिले ही मैं इन्हें छोड़ दूँ, क्योंकि जो इन्हें न छोडूँगा तो भी ये नियमसे मुझे छोड़ ही देंगे । तब मुझे बहुत दुःख होगा और आर्तध्यानसे कुगतिका पात्र हो जाऊँगा । इसप्रकार विचारने लगे कि—

विश्वमें जो वस्तु उपजी, नाश तिनका होयगा ।
तू त्याग इनहिं अनित्य, लखकर नहीं पीछे रोयगा ॥

अनित्य भावना ।

मृत्युके समय मेरा कोई भी सहाई न होगा । किसके शरण जाऊँगा ? कोई भी बचानेवाला नहीं है ।

देव इन्द्र नरेन्द्र खगपति, और पशुपति जानिये ।
आयु अंतहि मरें सब ही, शरण किसकी ठानिये ॥

अशरण भावना ।

संसार दुःखरूप जन्म मरणका स्थान है ।

पिता मर निज पुत्र होवे, पुत्र मर भ्राता सही ।
परिवर्तरूपी जगत मांही, स्वांग बहु धारे यही ॥

संसार भावना ।

इसमें जीव अनादिकालसे अकेला ही भटकता है ।

स्वर्ग नर्कहिं एक जावे, राज इक भोगे सही ।
कर्म फल सुखदुःख सब ही, अन्यको बांटे नहीं ॥

एकत्व भावना ।

कोई किसीका साथी नहीं है ।

देह जब अपना न होवे, सेव जिह नित ठानिये।
तो अन्य वस्तु प्रतछपर हैं, किन्हें निजकर मानिये॥
अन्यत्व भावना।

मिथ्यात्वके उदयसे यह इस घृणित शरीरमें लोलुप हुआ विषय सेवन करता है।

मलमूत्र आदि पुरीष जामें, हाड मांस सु जानिये।
घिन देहगेह जु चाम लपटी, महां अशुचि बखानिये॥
अशुचि भावना।

और रागद्वेष करके कर्मोंको उपार्जन करता है।

मन वचन काय त्रियोग द्वारा, भाव चंचल हो रहे।
तिनसे जु द्रव्यऽरु भाव आस्रव, होय मुनिवर यों कहे॥
आस्रव भावना।

यदि यह मन, वचन, कायको रोककर अपने आत्मामें लीन हो तो कर्मसे न बंधे।

योगको चंचलपनो, रोके जु चतुर बनायके।
तब कर्म आवत रुकें निश्चय, यह सुनो मन लायके॥
संवर भावना।

व्रत, तप, चारित्र धारण करे तो पूर्व संचित कर्म भी क्षय होजावें।

व्रत समिति पंच अरु, गुप्ति तीनों धर्म दश उर धारके।
तप तपें द्वादश सहें, परिषह कर्म डारें जारके॥
निर्जरा भावना।

तो इस अनादि मनुष्याकार लोक, जो तीन भागोंमें (ऊर्ध्व अधः और मध्य) विभाजित है और ३४३ घन राजूका क्षेत्रफलवाला है, के भ्रमणसे बच सकता है।

अधो ऊरध मध्य तीनों, लोक पुरुषाकार हैं।
तिनमें सुजीव अनादिसे, भरमैं भरें दुखभार हैं॥

संसारमें और सब वस्तुएँ मिलना सहज हैं और अनंतवार मिली हैं, परन्तु रत्नत्रय ही नहीं मिला है। लोक भावना

विश्वमें सब सुलभ जानो, द्रव्य अरु पदवी सही।
कह दीपचन्द्र अनंत भवमें, बोधिदुर्लभ है यही॥

बोधिदुर्लभ भावना।

सो ऐसे रत्नत्रय धर्मको पाकर यह जीव अवश्य ही संसार भ्रमणसे बच सकता है।

कल्पतरु अरु कामधेनु, रत्न चिंतामणि सही।
यांचे विना फल देत नाहीं, धर्महे विन इच्छ ही॥

धर्म भावना।

इस प्रकार संसारके स्वरूपका विचारकर तुरन्त ही वे अपने ज्येष्ठ पुत्र धनपालको बुलाकर कहने लगे—"हे पुत्र अब मुझसे राज्य नहीं हो सकता, अब मैं अपनी अनादिकालसे खोई हुई असल संपत्ति (जो स्वात्मलाभ) प्राप्त करूंगा। तुम इस राज्यको सम्हालो।"

तब पुत्र बोला—

"हे पिता! मैं अभी बालक हूं। मैंने निश्चित होकर अपना काल खेलनेमें ही बिताया है। राज्यकार्यमें मुझे कुछ भी अनुभव नहीं है। सो यह इतना बड़ा कार्य मैं कैसे करूंगा? आपके बिना मुझसे कुछ न हो सकेगा?"

तब राजा बोले—'हे पुत्र! सदासे यही नीति चली आई है

राजा श्रीपाल दीक्षा लेकर वनमें ध्यान कररहे हैं।

[देखो पृष्ठ १९४]

कि पिताका राज्य पुत्र ही करता है, सो तू सब लायक है। फिर क्यों चिंता करता है? राज्य ले और प्रेमपूर्वक नीतिसे प्रजाको पाल।' जब पुत्र धनपालने आज्ञाप्रमाण राज्य करना स्वीकार किया तब श्रीपालजीने कुँवर धनपालको राज्यपट्ट देकर तिलक कर दिया, और भले प्रकार शिक्षा देकर कहा—

हे पुत्र! अब तुम राजा हुए। यह प्रजा तुम्हारे पुत्रके समान है। 'यथा राजा तथा प्रजा' होती है, इसलिये मिथ्यात्वको सेवन नहीं करना। परधन और परत्रियपर दृष्टि नहीं डालना। अपना समय व्यर्थ विकथाओंमें नहीं बिताना। इन्द्रियोंको न्याय विरुद्ध प्रवर्तन करनेसे रोकना, जीवमात्रसे प्रीति और दयाभाव रखना, परोपकारमें दत्तचित्त रहना।" इत्यादि वचन कहकर आप वनकी ओर चले गये।

आपके जाते ही प्रजामें हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे कि अब "चंपापुरकी शोभा गई। अहा! ये महाबली दयावंत प्रजा पालक महाराजा कहां चले गये, जिनके राज्यमें हम लोगोंने शांतिपूर्वक जीवनका आनन्द भोगा। महाराज क्यों चले गये? क्या हम लोगोंसे उनकी सेवामां कुछ कमी हो गई? या और कोई कारण हुआ? राजा हम लोगोंको क्यों छोड़ गये?" इत्यादि कोई कुछ कोई कुछ कहने लगे, तब राजा धनपालने सबको धैर्य दिया। मैनासुंदरी आदि आठ हजार रानियोंने जब स्वामीके बन जानेका समाचार सुने, तो वे भी साथ हो गईं, और माता कुंदप्रभा भी साथ हुई। और बहुतसे पुरजन भी साथ होकर वनमें गये। सो जब कोटीभट्ट वनमें पहुँचे, तो वहांपर महामुनीश्वर बैठे देखे, उनको नमस्कार कर प्रार्थना

की कि 'हे नाथ! मैं अनादिकालका दुःखिया हूँ, सो अ[illegible] कर मुझे भवसागरसे निकालिये अर्थात् जिनेश्वरी दीक्षा दीजि[illegible]

तब श्रीगुरुने कहा—"हे वत्स! यह तुमने अच्छा विचार कि[illegible] है। जन्म मरणकी सन्तति इसीसे छूटती है, सो तुम प्रसन्नता पूर्व[illegible] जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करो। तब श्रीपालने सब जनोंसे क्षमा कराकर तथा आपने भी सबको क्षमा कर दीक्षा लेनेके लिये वस्त्राभूषण उतार कर श्रीगुरुको नमस्कार किया। श्रीगुरुने इन्हें दर्शन ज्ञान चारित्र तप और वीर्य, इन पंचाचारों तथा दिगम्बर मुनियोंके २८ मूल गुणों तथा अन्य सब आचरणका भेद समझाकर दीक्षा दी। सो इनके साथ सातसौ वीरोंने भी दीक्षा ली। और भी बहुतसे स्त्री पुरुषोंने यथाशक्ति व्रत लिये तब रानी कुंदप्रभा और मैनासुंदरी. रयनमंजूषा, गुणमाला, चित्ररेखादि रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत लिये।

श्रीपालको केवलज्ञान।

राजा श्रीपाल दीक्षा लेकर बाईस परीषहोंको सहते, दुर्द्धर तप करते, तेरा प्रकार चारित्रको पालते, और देश विदेशोंमें भव्य जीवोंको संबोधन करते हुए कुछ काल तक विचरते रहे। तपसे शरीर क्षीण हो गया। कभी गिरि, कभी कंदर, कभी सरोवरके तट और कभी झाड़के नीचे ध्यान लगाते। शीत उष्णादि परीषह तथा चेतन अचेतन वस्तुओंकृत घोर उपसर्गोंको सहते तपश्चरण करने लगे। सो कुछेक काल बाद घातिया कर्मोंका क्षय होते ही उनको केवलज्ञान प्रगट हुआ। उस समय देवोंका आसन कंपायमान

हुआ, सो इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर गंधकुटीकी रचना की, और सुरनर विद्याधरोंने मिलकर प्रभुकी स्तुति कर केवलज्ञानका उत्सव किया।

इस प्रकार वे श्रीपालस्वामी अपने प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा लोकालोकके समस्त पदार्थोंको हस्तरेखावत् देखने जाननेवाले बहुत काल तक भव्यजीवोंको धर्मका उपदेश करते रहे। पश्चात् आयु कर्मके अन्तमें शेष अघातिया कर्मोंका भी नाशकर एक समय मात्रमें परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए और सम्यक्त्वादि आठ तथा अनन्त गुणोंको प्राप्तकर संसार संतति, जन्म, जरा, मरणका नाशकर अविनाशी पद प्राप्त किया। धन्य हैं वे पुरुष, जो इस भवजलको शोषण कर परमात्मपद प्राप्त करें।

सिद्धचक्र व्रत पालकर, पंच महाव्रत मांड।
श्रीपाल मुक्तहिं गये, भव दुःख सकल विछांड॥
सिद्धचक्र व्रत धन्य है, धन पालक श्रीपाल।
फल पायो तिन व्रत्तको, 'दीप' नवावत भाल॥

और मैनासुंदरी आर्यिकाने भी घोर तप किया। सो अंतमें सन्यास मरण कर सोलहवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर वाईस सागर आयुका धारी देव हुआ। वहांसे चय मोक्ष जावेगा। कुंदप्रभा रानीने भी तपके योगसे सन्यास–मरण कर सोलहवें स्वर्गमें देव पर्याय पाई। तथा रयनमंजूषा आदि अन्य स्त्री तथा पुरुषोंने भी जैसा जैसा तप किया उसके अनुसार स्वर्गादि शुभ गतिको प्राप्त हुए।

इस प्रकार हे राजा श्रेणिक! श्रीपालजीका चरित्र और सिद्धचक्र व्रतका फल तुमसे कहा। ऐसा श्री गौतमस्वामीके मुखसे सिद्धचक्र व्रतका फल (श्रीपालका चरित्र) सुनकर सम्पूर्ण सभा

अत्यानन्द हुआ। देखो, जिनधर्म और इस व्रतकी महिमा, कि कहां तो कोढ़ी श्रीपाल, और कहां आठ दिनमें कोढ़ दूर होकर कामदेवके समान रूप होना, और सागर तिरना, लक्ष चोरोंको बांधना तथा और भी बड़े २ आश्चर्य जैसे कार्य करना। आठ हजार रानियों और इन्द्रके समान बड़ी विभूतिका स्वामी होना। व इस प्रकार मनुष्य भवमें यश, कीर्ति और सुखोंको भोगकर अन्तमें सकल कर्मोंका नाशकर अविनाशी पदका प्राप्त होना। इसलिये जो कोई भव्य जीव जिनधर्मको धारण कर मन, वचन, कायसे व्रतोंको पालन करते हैं वे भी इस प्रकार उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं।

सर्व धर्मको सार है, सम्यक दर्शन ज्ञान।
अरु सम्यक चारित्र मिल, यही मोक्षमग जान॥
कर त्रिशुद्धि या मग लगें, जो नर चतुर सुजान।
सो सुरनर सुख भोगके, अन्त लहैं निर्वान॥
जो नर वांचे भावसे, सुने सुनावें सार।
मन वांछित सुख सो लहैं, अरु पावें भव पार॥
पंच परम पद पद प्रणमि, सरस्वती उर धार।
सरल देश भाषा करी, पद्य ग्रन्थ अनुसार॥
तीर्थंकर[४] भज शल्य[३] तज, ज्ञेय पदार्थ विचार।
ज्येष्ठ कृष्ण ग्यारस करी, कथा पूर्ण सुखकार॥
शब्द भेद जानो नहीं, पढ़ो न शास्त्र पुरान।
न्यूनाधिकता होय जो, क्षमा करो बुधवान॥
नरसिंहपुर है जन्म थल, जाति जैन परवार।
'दीपचन्द' वर्णी करी, भाषा बुद्धि अनुसार॥